सचित्र कथाएं

अनन्त आकाश में... ६

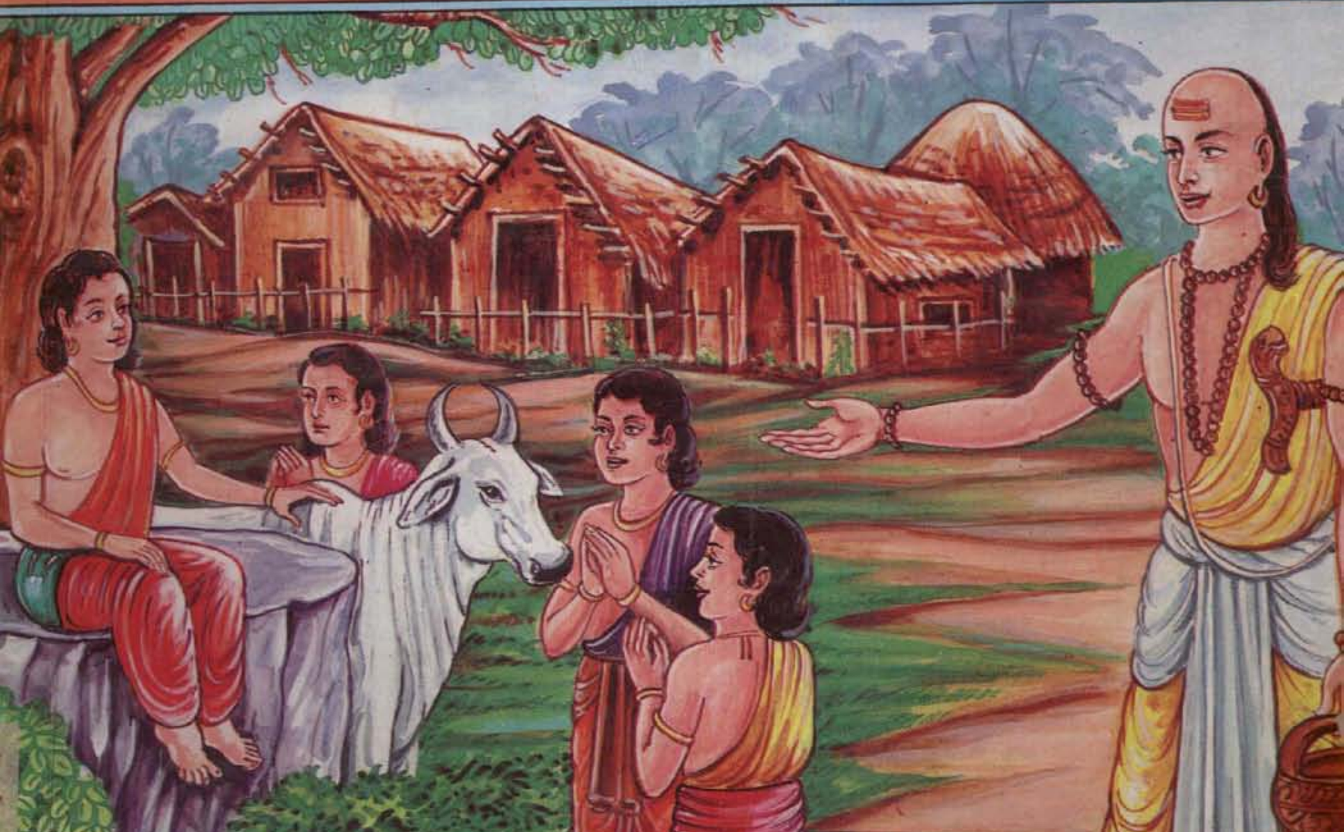

मुनिश्री आत्मदर्शन विजय जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पू. आत्मदर्शनविजयजी म.सा. द्वारा भेट. ता-10-07-1999
पर्याय नं - 986

॥ वन्दे वीरम् ॥

ऐतिहासिक और शास्त्रीय घटनाओं द्वारा अंधकारमय मानव जीवन में,
अद्भुत आशा का प्रकाश फैलाने वाली.... एवं
आत्मा की गहराई में बेधक दृष्टिपात करने को आह्वान देने वाली सचित्र पुस्तक....

W. 10393
16-07-1999

अनन्त आकाश में

६

आधार ग्रन्थ

महोपाध्याय श्री भावविजय गणिकृत-वृत्ति समेत श्री उत्तराध्ययन सूत्र

शुभाशिष

आध्यात्म योगी आचार्य देव श्री विजयकलापूर्ण सूरीश्वरजी महाराज
अनन्य-उपकारी पूज्य गुरुदेव श्री आनन्द वर्धन विजयजी महाराज

लेखक

मुनिश्री आत्मदर्शन विजय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

82799

समर्पण

जिनका **केशलुंचन** महान् साधुत्व का प्रतिनिधित्व करता है....

जिनकी प्रशान्त-मुखमुद्रा **कषायलुंचन** की याद दिलाती है....

जिनके कमल की पंखुड़ी जैसे नेत्र **कामलुंचन** के प्रतीक बने हैं....

जिनके के अधर के आस-पास मधुर-साहजिक स्मित **कृत्रिमता-लुंचन** का सूचक है....

जिनका योगि-सहज सरल व्यक्तित्व **कपटलुंचन** दिखाता है....

उन

महान

अध्यात्मयोगी

प्रगुरुदेव श्री–

कलापूर्ण सूरी जी के

कर कमलों में

सानन्द

समर्पण

करता

हुआ

"योगि बाल"
आत्म दर्शन विजय

Serving JinShasan
082799
gyanmandir@kobatirth.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम पूज्य आध्यात्मयोगी आचार्य देव श्री कलापूर्ण सूरीश्वरजी म. सा.

के

शिष्य रत्न

पूज्य मुनिराज श्री कुमुदचन्द्र विजयजी म. सा.

के २५ वर्ष के संयम जीवन की अनुमोदनार्थ

(दीक्षा वि. सं. २०२७ वै. सु. ६ खंभात)

सादर समर्पित .....

सौजन्य

सेठ छोगालालजी उमेदमलजी कटारिया

संघवी परिवार सांचोर (सत्यपुर) राजस्थान

शा. पूनमचंदजी किस्तुरचंदजी चांदराई (राज.)

फर्म :-शा. चन्द्रप्रकाश जवानमल कापुस्ट्रीट, नेल्लोर (आन्ध्रप्रदेश)

फेन्सीबाइ बाबुलालजी लालचंदजी (राज.) कवराडा

प्रकाशकुमार, किशोरकुमार

१३/५५८, काकरलावारी स्ट्रीट, नेल्लूर (आन्ध्रप्रदेश)

www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखकीय

काल का रूप तो परिवर्तित होता ही रहा है–परन्तु आमन्त्रित विदेशी विकृतिओं ने तो भारतीय जन-मानस पर वासनाओं के हंटर बरसा दिये हैं ······ जब सन्तों को बचना भी कठिन हो तो नई-पीढ़ी के सन्तान इस हंटर मार को कैसे झेल सकते हैं ?

कहाँ है ? आज की नई पीढ़ी के पास–

कालिदास और ऋषभदास की कविता ?
श्री हेमचन्द्राचार्य और शंकराचार्य की विद्वता ?
राणा प्रताप और भगतसिंह की शूरवीरता ?
पद्मिनी और सीता की शीलवत्ता ?
कहाँ है–वस्तुपाल और तेजपाल
कहाँ है विवेकानन्द ? कहाँ है अरविन्द ?
कहाँ है सुभाषचन्द्र ? कहाँ चन्द्रशेखर ?

ये सब छीन लिया है······ उस········ व्योम-मार्ग द्वारा गुप्त रूप से उतारी हई पंक्तिबद्ध टी. वी. श्रंखलाओं ने·········

विकृत्तिओं की भरपूर बाढ़ में डुबते हुए किशोरो, युवाओं, बालकों को उबारने के लिए कुछ सन्त-महन्तों ने सजग होकर बीड़ा उठाया है।

नई पीढ़ी के आक्सीजन युक्त संस्कार-प्राणों को पुनः जीवित करने के लिए उन्होंने प्रण किया है।

जिसमें उन्होंने अपनी आध्यात्मसाधना को कुछ गौण किया······ निम्नस्तर की देशना पद्धति को अपनाना पड़ा।

सिर पर कफन बाँधकर अनेक प्रकार के नये प्रयोगों द्वारा उन्होने तन-मन का ह्रास भी किया।

प्रस्तुत सचित्र कथा-साहित्य भी इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये श्री गणेश कर रहा है, जो कि आज कल धीमी मन्द गति से आगे बढ़ रहा है।

इस प्रसंग पर सुंदर चित्र और सुन्दर प्रिन्ट कार्य कर देने वाले "दिवाकर प्रकाशन" (आगरा) का (इसी दिशा में) प्रयत्न सराहनीय है। हिन्दी अनुवादक श्री संत दयाल को भी कैसे भुलाया जाय ?

आशा है ···· पाठकगण, चित्रों को स्पर्श करेंगे (या श्रद्धा से दर्शन करेंगे)। कथायें तो पढ़ेगे ही किन्तु साथ-साथ उनसे कुछ शिक्षा (बोध) भी प्राप्त करेंगे।

इसी कामना के साथ–

जिनाज्ञा के विरुद्ध यदि कहीं लिखा गया हो तो मिच्छामि दुक्कडम्····

–श्री योगि-पाद-पदम रेणुः/मुनि आत्मदर्शन विजय
२०५२
मद्रास/आराधना भवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूची (क्रम-दर्शन)

		पेज नं.
१.	प्राण, सबको प्यारे	१–२
२.	मदिरा का करुण अंजाम (परिणाम)	३–७
३.	कर्मों की गत न्यारी	८–११
४.	अपूर्व भ्रातृ-स्नेह	१२–१४
५.	महिमा : कृष्ण-नरसिंह की	१५–१६
६.	कृष्ण का क्रोध-विजय	१७–१८
७.	धर्म-खुमारी (धर्म-शौर्य)	१९–२१
८.	दिगम्बर मत के आद्य प्रणेता	२२–२७
९.	चाणक्य और चन्द्रगुप्त	२८–३२
१०.	बदलती राजनीति	३३–३५
११.	समृद्ध प्राचीन भारत	३६–३८
१२.	स्त्री-हठ	३९–४५
१३.	भागीरथी जाह्नवी का संक्षिप्त इतिहास	४६–४९
१४.	तीर्थ की आशातना न करें	५०–५२
१५.	देव बनना है या दिवालिया ?	५३–५५

卐

आर्ट वर्क एवं प्रिंटिंग

द्वारा संजय सुराना, दिवाकर प्रकाशन

ए-7, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-282 002. फोन : (0562) 351165, 51789

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. प्राण सबको प्यारे

एक बार महाराज श्रेणिक ने सभा में आये हुए लोगों से पूछा–"इस समय राजगृह नगर में ऐसी कौन-सी वस्तु हैं, जो सस्ती एवं स्वाद में स्वादिष्ट हों?"

सब ने अपनी-अपनी राय प्रस्तुत की। क्षत्रियों की भी बारी आई। उन्होंने कहा, "इस समय सस्ती एवं स्वादिष्ट वस्तु केवल माँस है।"

यह सुनकर वहाँ बैठे हुए अभयकुमार ने सोचा–"ये लोग ढीठ हैं। यदि इनको सबक नहीं सिखाया गया तो हिंसक आचार-विचारों का व्यापक प्रसार होगा। इसलिए ऐसा कोई उपाय करना चाहिए, जिससे फिर से ये लोग इस प्रकार बोलने की आदत भूल जाये।"

यह सोचकर उसी रात अभयकुमार ने सभी क्षत्रियों के घर जाकर उनसे कहा– राजकुमार गम्भीर रूप से बीमार है। वैद्यों के कथन अनुसार राजकुमार को जीवित रखने का केवल एक ही उपाय है और वो है थोड़ा-सा मनुष्य के कलेजे (हृदय) का माँस। हे क्षत्रियो ! आप लोग राजा का अन्न (नमक) खाते हो। अतः राजकुमार को किसी भी तरह बचाना आप लोगों का परम कर्त्तव्य है। और हाँ, कलेजा लेने के बाद आपको, परिवार की आजीविका चलाने के लिए राज्य की ओर (तरफ) से एक हजार सोनैया दिया जायेगा। जिससे बाद में आपको परिवार की चिन्ता न रहे।"

यह सुनकर एक क्षत्रिय ने हाथ जोड़कर नम्र स्वर में कहा–"मैं अपनी एक हजार सोनैया आपको अर्पण करता हूँ। कृपया आप यहाँ से जाइये और किसी अन्य क्षत्रिय से कलेजा (हृदय) माँगिये। मुझे जीवन-दान दीजिये।"

अभयकुमार एक हजार सोनैया लेकर वहाँ से अन्य क्षत्रियों के यहाँ चल दिया। सभी क्षत्रियों ने अभयकुमार से एक ही बात कही। "हमारे से एक हजार सोनैया ले जाइये, किन्तु हमें जीवित छोड़ दीजिये। कलेजा (हृदय) किसी अन्य से ग्रहण करिये।"

इस प्रकार अभयकुमार ने प्रत्येक क्षत्रिय के घर जाकर कुल एक लाख सोनैया एकत्रित किये, किन्तु किसी ने भी अपने कलेजे का माँस नहीं दिया।

दूसरे दिन सुबह अभयकुमार ने राज्य-दरबार में एक लाख सोनैया का ढेर कर दिया। और क्षत्रियों से कहा– "कल आप लोग इस सभा में सबसे सस्ती वस्तु माँस बता रहे थे। किन्तु एक लाख सोनैया के बदले थोड़ा-सा भी माँस न मिल सका। अब बताओ, माँस मँहगा हैं या सस्ता?"

अभयकुमार ने सभी क्षत्रियों को झिड़क दिया और आइन्दा माँसाहारी भोजन न करने प्रतिज्ञा दिलायी।

यदि एक लाख सोनैया के बदले कोई अपना माँस न दे सकता हो तो, क्या क्रूरता से कत्ल किये गये अन्य प्राणियों के अंग ग्रहण करना या उनका व्यापार करना उचित है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

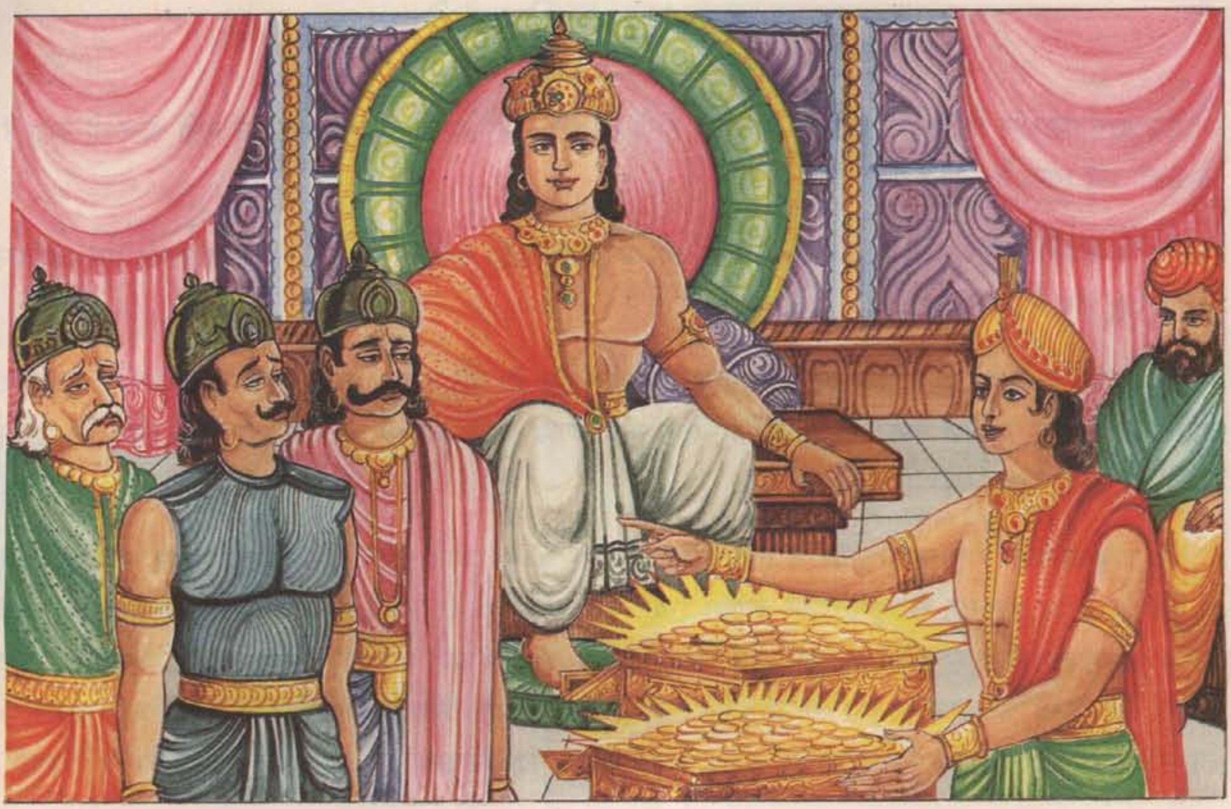

अरे ! माँसाहारिओं !!

मुँह के अन्दर के छाले (नासूर) की पीड़ा भी सही नहीं जा सकती .... काँटा निकलने के बाद भी उसकी पीड़ा असहनीय होती है। तब क्रूरता से कत्ल किये गये प्राणियों के माँस का भक्षण करके उनकी आहें .... और कराहें क्या जीवन को वास्तव में सुखमय बना सकती हैं .... स्मरण रहे कि प्राण सबको प्यारे होते हैं।

सोचो ...... !! भविष्य तो भयंकर है ही, लेकिन वर्तमान जीवन को भी स्वास्थ्य के लिए भारी परेशानी में डाल रहे हों ....

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मदिरा का करुण अंजाम (परिणाम)

कौन अनजान होगा मदिरा से होने वाली बरबादी से?

युगों-युगों से मनुष्य नशीले पदार्थों के चंगुल में फँसता जा रहा है। और अपने-पराये के प्राणों की भी परवाह किये बिना अपनी बुरी आदतों की पूर्ति करने के लिए कानूनी व गैर कानूनी (अवैध) शराब के ठेकों की ओर दौड़ता चला जाता है।

प्राचीन युग में श्रीकृष्ण के परिवार में शराब (मदिरा) से जो भयंकर परिणाम हुए उसकी रोचक कहानी हमें बहुत कुछ कह जाती है।

श्रीकृष्ण की नगरी द्वारका, स्वर्ग की अमरापुरी नगरी के समान थी। कहा जाता है कि १२ (बारह) योजन के क्षेत्रफल वाली देव-निर्मित द्वारका नगरी के चारों तरफ चाँदी का गढ़ (किला) था और उसके ऊपर स्थित सोने के कंगुरे मेरु-समान सुशोभित थे।

एक बार नेमि प्रभु द्वारका में पधारे। देशना (प्रवचन) सुनने गये श्रीकृष्ण ने उनसे एक प्रश्न पूछा-"प्रभु ! द्वारका नगरी, सम्पूर्ण (सारे) यदुवंश और मेरा अन्त किस प्रकार होगा?"

श्री नेमिनाथ ने उत्तर दिया–हे कृष्ण ! द्वारका सहित सम्पूर्ण (सारे) यदुवंश का नाश, मरकर देव बने द्वैपायन नामक ऋषि द्वारा अग्नि से होगा। और तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे ही भाई जराकुमार के हाथों होगी।"

वसुदेव के तीन रानियों से उत्पन्न तीन पुत्र थे। देवकी से श्रीकृष्ण, रोहिणी से बलदेव और जरा रानी से जराकुमार। वासुदेव के और भी अनेक रानियाँ थीं। शांब-प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ यदुवंशीय राजकुमारों एवं अन्य करोड़ों यदु जनों से युक्त परिवार में बलराम एवं कृष्ण आपस में अत्यन्त स्नेह व एकता से रहते थे।

"मेरे हाथ से यदुवंश के आधार-स्तम्भ श्रीकृष्ण की मृत्यु नहीं होनी चाहिए। यह सोचकर जराकुमार धनुष-बाण लेकर वन में निवास करने चले गये। द्वैपायन ऋषि भी अपने हाथों से होने वाले "द्वारका एवं यदुवंश के नाश" की बात प्रभु के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख से सुनकर, द्वारका के बाहर स्थित वन में तपस्या करने लगे। चूँकि द्वारका और यादवों के प्रति उनको स्नेह-भाव था, जिसके कारण अपने हाथों द्वारका-विनाश उन्हें स्वीकार न था।

श्रीकृष्ण ने नेमि प्रभु को प्रणाम करके द्वारका नगरी में प्रवेश किया और इस प्रकार घोषणा कराई–"प्रभु नेमिनाथ के वचनानुसार मदिरा से उन्मत्त यदु कुमारों द्वारा अत्यधिक अपमानित हुए द्वैपायन ऋषि द्वारा इस नगरी को मरणान्त उपसर्ग होने वाला है। इसलिए नगर के बाहर पर्वत के पास कदम्ब वन में कादम्बरी गुफा के अन्दर स्थित विशाल शिला-कुण्डों में मदिरा आदि मादक पदार्थों का त्याग करना चाहिए।" यह सुनकर सभी नगरजनों ने मदिरा का पूरा भण्डार उन शिला-कुण्डों में उलट दिया।

छः माह बाद अनेक वृक्षों के समूह से झड़ते पुष्पों से कुण्डों में पड़ी सारी मदिरा पक्वरस युक्त (स्वादिष्ट) बन गई। एक बार शांब (कुमार) का शिकारी घूमते-घूमते उस जंगल में आ पहुँचा। और तृष्णा (प्यास) से पीड़ित उसने उस मदिरा का पान किया। मदिरा के मधुर स्वाद से तृप्त होकर उसने कुछ मदिरा मशक में डालकर शांब कुमार को दी। "इतनी स्वादिष्ट मदिरा तुम कहाँ से ले आये?"–शांब कुमार के इस प्रश्न के उत्तर में शिकारी ने बताया कि मदिरा उसने कादम्बरी के कुण्ड से प्राप्त की थी। अनेक स्वच्छंदी यदु कुमारों ने शांब के साथ वहाँ जाकर उस मदिरा का तब तक उपभोग किया जब तक कि वे पूर्ण रूप से तृप्त न हो जायें। तत्पश्चात् पागलों (विक्षिप्तों) की तरह उन्मत्त होकर वे पर्वत पर चढ़कर क्रीड़ाए करने लगे। तभी उन्होंने तपस्या में लीन द्वैपायन ऋषि को देखा। ऋषि को देखते ही उन्होंने सोचा–"यही हमारी नगरी का विनाशक बनने वाला है। किन्तु विनाशक बनने से पहले ही हम इसका नाश कर देंगे। जिससे द्वारका-विनाश का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा।"–यह सोचकर द्वैपायन का अपमान करने के अलावा उन लोगों ने उनको लात-मुक्के और डण्डों से मारना शुरू कर दिया। और अन्त में द्वैपायन को अधमरा करके पहाड़ से नीचे जमीन पर पटक दिया।

एक चरवाहे ने इस घटना की सूचना श्रीकृष्ण को दी। यह सुनकर दुःखी कृष्ण, बलराम के साथ द्वैपायन के पास दौड चले आये और उनके क्रोध को शान्त करने के लिए मधुर वचनों से उनसे क्षमा माँगते हुआ कहा–"हे महर्षि ! मदिरा से उन्मत्त हुए अविवेकी एवं अज्ञानी मेरे पुत्रों ने आपका जो अपमान किया है, उसके लिए हम क्षमा चाहते हैं। कृपया हमें

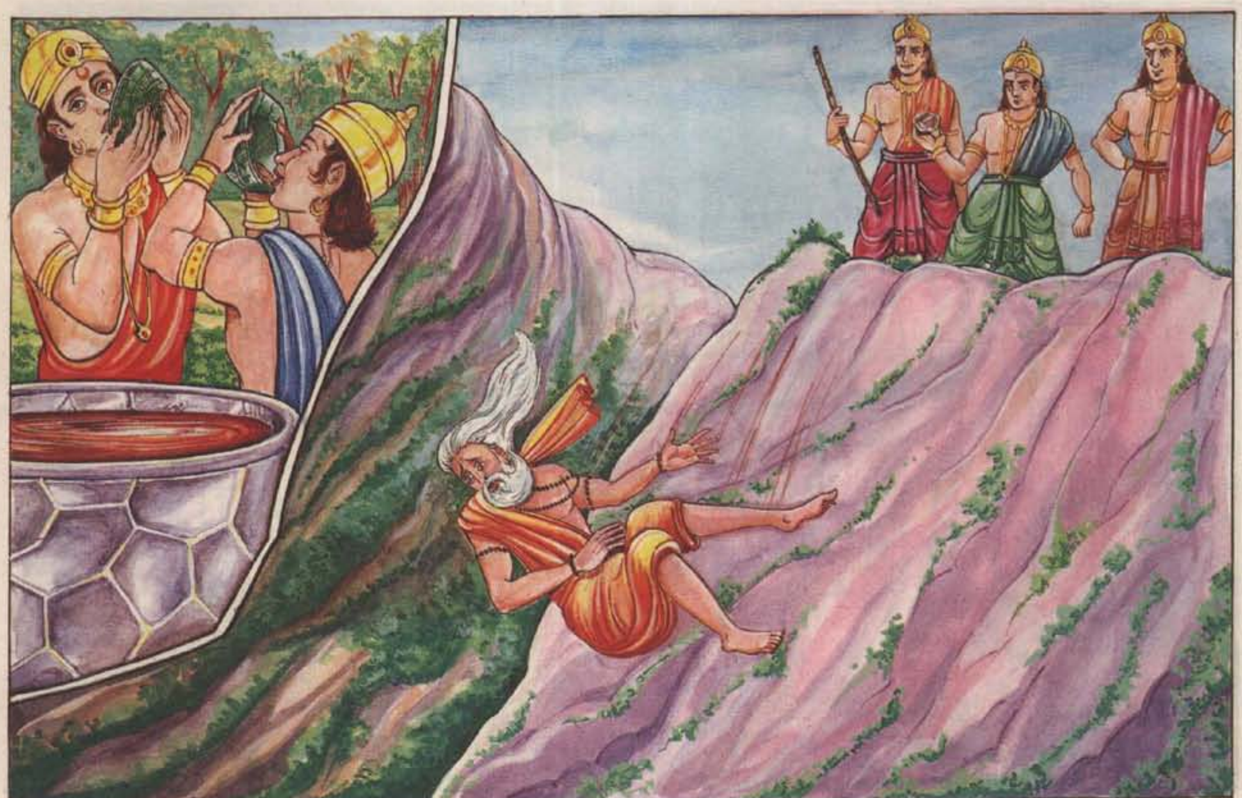

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमा कर दीजिये।'' कृष्ण के ऐसा कहने के पश्चात् भी–अशान्त और असीमित क्रोध वाले द्वैपायन ने कहा–''अरे कृष्ण ! तुम्हारे मधुर वचनों से अब कुछ नहीं होगा। तुम दोनों के सिवा नगरजनों सहित सम्पूर्ण नगरी को जला देने का मैंने संकल्प किया है। और मेरे संकल्प को बदलने की शक्ति किसी में भी नहीं हैं। चले जाओ यहाँ से ...... आग लगी हो तब कुँआ खोदने की मूर्खता-भरी चेष्टा मत करो।'' बलराम ने भी श्रीकृष्ण को समझाते हुए कहा–''भाई ! प्रभु के वचनों को परिवर्तित करने की शक्ति किसी में भी नहीं हैं। इस योगी को समझाने के बजाये हमें वापस जाना चाहिए।''

शोक से व्याकुल होकर दोनों वापस आ गये। दूसरे दिन श्रीकृष्ण ने द्वैपायन के संकल्प की घोषणा नगर में करवायी। और नगरजनों को धर्माराधना में विशेष रूप से (लीन) तत्पर रहने के लिए कहा।

एक बार नेमि प्रभु गिरनार पर्वत पर पधारे। मोहहर एवं मनोहर देशना सुनकर शांब-प्रद्युम्न आदि अनेक कुमारों और रुक्मिणी आदि यदुवंश की अनेक स्त्रियों ने प्रभु से प्रव्रज्या ग्रहण की और दोनों लोकों (उभय लोक) के कष्टों से मुक्त हुए।

उस समय कृष्ण वासुदेव खड़े हुए एवं हाथ जोड़कर प्रभु से पूछा–''प्रभु ! कितने समय बाद द्वैपायन द्वारा द्वारका में उपद्रव होगा?'' ''द्वैपायन बारह वर्ष बाद द्वारका को जलायेगा।'' इतना कहकर प्रभु विहार करने अन्य स्थान को चले गये। श्रीकृष्ण ने द्वारका जाकर फिर से उद्घोषणा करवायी और दया-दान-ब्रह्मचर्य-अचोर्य एवं आयंबिल का तप आदि अनुष्ठान नगरजनों को विशेष रूप से करते रहने के लिए कहा। नगरजन भी सावधान होकर देव-पूजा, आयंबिल का तप आदि धर्माराधनाा में विशेष रूप से लीन रहने लगे।

द्वैपायन ऋषि भी संकल्प पूर्वक मरकर अग्निकुमार देव बने। पूर्वभव के वैर याद करके वे द्वारका में आये। किन्तु नगरजनों की विशेष धर्माराधना के समक्ष उनकी शक्ति काम नहीं आ सकती थी। इसलिए नगरजनों की कमजोरियाँ तलाशते हुए वे वहीं (आकाश में) भटकने लगे।

इधर नगरजनों ने सोचा कि ''तप के प्रभाव से द्वैपायन भाग गये हैं।'' और उन्होंने बारह वर्ष पूरे होने के बाद तपस्या आदि छोड़कर पूर्व की भाँति मदिरा, माँस आदि का सेवन करना आरम्भ कर दिया तथा धर्म निरपेक्ष एवं स्वच्छन्द रूप से बर्ताव करने लगे।

द्वैपायन देव भी इस कमजोरी को पाकर प्रसन्न हुए। उस समय द्वारिक नगरी में विनाश का संकेत देने वाले उत्पात होने लगे। बलराम और कृष्ण के हल एवं चक्र आदि रत्नों का नाश हुआ। तत्पश्चात् द्वैपायन देव ने संवर्त-वायु उत्पन्न करके, लकडी, पत्ते, घास आदि से पूरे नगर को पाट दिया। अनेक प्रकार के उत्पात देखकर सारे नगर में हड़कम्प मच गया। नगरजनों को नगर का विनाश अब निकट प्रतीत होने लगा। भयभीत होकर नगरजन द्वारका छोड़कर भागने लगे। किन्तु द्वैपायन ने महा वायु उत्पन्न करके पलायन करते हुए नगरजनों को उठा-उठा कर नगर के अन्दर बन्द कर दिया। नगर के द्वार बन्द करके नगर के अन्दर और नगर के बाहर रहे करोड़ों यादवों को एकत्रित करके द्वैपायन ने आग लगा दी। चारो तरफ आग लग गई। आग बुझ न जाये इसलिए द्वैपायन (सुराधम) उसमें वृक्ष एवं लतायें भी डालते गये। पूरे नगर में इतना धुआँ फैल गया कि लोग एक-दूसरे को देख भी नहीं पा रहे थे। अंधों के समान एक भी कदम खिसकने के लिए लोगों में शक्ति नहीं थी। बच्चों की चीखें, युवाओं का शोर, स्त्रियों की पुकार एवं वृद्धों के आक्रन्द से वातावरण अत्यन्त शोकमय एवं करुणामय हो उठा। स्वर्ण एवं रत्नों से सुशोभित प्रासाद राख में बदलने लगे। एक दूसरे से लिपटे हुए असहाय परिजन अग्नि का ग्रास बनने लगे। ऊँची हवेलियों की दीवारें और छतें जमीन पर गिरने लगीं। कड़-कड़ की आवाज करती विशाल इमारत एवं अग्नि-ज्वालाओं की ब्रह्माण्ड-सी भयंकर आवाजों से ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश-माताल एक हो गया हो। शस्त्रागार ... भस्मागारों में बदलने लगे। स्वयं मालिक ही अग्नि का ग्रास होने लगे तो प्राणियों की क्या औकात? हाथी, घोड़े सहित हस्तिशालायें एवं अश्वशालायें भी इन भयानक क्षणों में राख होने लगीं। सारी नगरी में विनाश का दैत्य नृत्य करने लगा।

पूरी (सारी) द्वारका नगरी को अग्नि-ज्वालाओं से आच्छादित देखकर, अत्यन्त व्याकुल होकर श्रीकृष्ण एवं बलराम ने तुरन्त ही पिता वसुदेव, माता देवकी तथा रोहिणी को महल से बाहर निकालकर रथ पर बिठाया और नगर के बाहर जाने के लिए रथ को हाँकना शुरू किया। किन्तु द्वैपायन द्वारा स्तंभित किये हुए घोड़े एक कदम भी आगे बढ़ने में असमर्थ थे। तब बलराम एवं कृष्ण घोड़े के स्थान पर स्वयं रथ खींचने लगे। युद्ध में अर्जुन के सात अश्व युक्त रथ के सफल सारथि कृष्ण को स्वयं अश्व का स्थान लेना पड़ा .... समय की कैसी विचित्रता !!!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

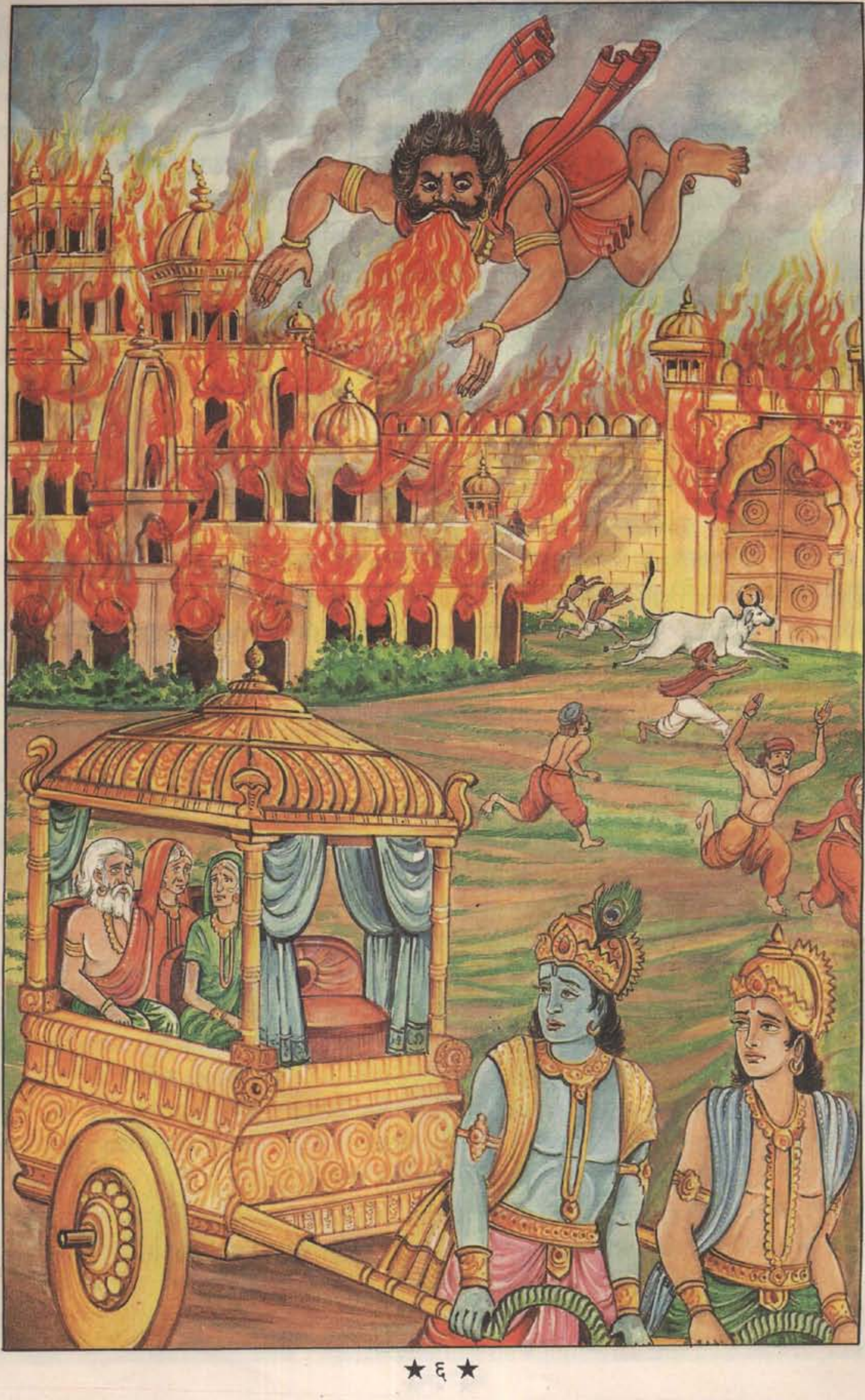

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"हे राम ! हे केशव ! हे पराक्रमी ! हे यादवेश्वर ! अग्नि के इस उपद्रव से हमें बचाओ, हमारी रक्षा करो।"–इस प्रकार नगरजनों का करुण आक्रन्द सुनते हुए, बलदेव और कृष्ण, माता-पिता का रथ खींचते हुए नगर के मुख्य द्वार तक आ पहुँचे और द्वैपायन द्वारा बन्द किये हुए उस द्वार को पैरों के प्रहार से तोड़कर रथ को बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु रथ बाहर नहीं निकल सका, मानो कीचड़ में फँस गया हो। तब आकाशस्थ द्वैपायन बोला–"हे कृष्ण ! मैं तुम दोनों के सिवा किसी को भी जीवित नहीं छोड़ूँगा। क्या मेरे पूर्वकथित संकल्प (प्रण) को तुम भूल गये? माता-पिता के मोह में तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है।"–यह सुनकर अति व्याकुल हुए बलराम और कृष्ण को माता-पिता ने स्नेहपूर्वक कहा–"वत्स ! तुम लोग अब जाओ। तुम्हारा मार्ग कल्याणमय एवं निर्विघ्न हो। तुम लोग जीवित रहोगे तो फिर से यदुकुल का उदय होगा। हमको बचाने में अब तुम लोग सफल नहीं होंगे।"–यह कहकर वासुदेव, देवकी और (बलराम की माता) रोहिणी तीनों अनशनपूर्वक नेमि प्रभु की शरण में आये। थोड़ी देर बाद द्वैपायन ने उनके ऊपर अग्नि-वर्षा की। तीनों नमस्कार महामंत्र का स्मरण करते हुए मृत्यु को प्राप्त करके देवलोक में देव हुए। असीमित दुःख से बलराम और कृष्ण विलाप करते हुए नगर के बाहर जाकर किसी जीर्ण उद्यान में चुपचाप बैठकर जलती हुई द्वारका नगरी को देखने लगे। पशुओं और नगरजनों की चींख-पुकारों एवं हड़कम्प से व्याप्त नगर को अग्नि-ज्वाला भस्म सात् कर रही थी। अश्रुपूरित नेत्रों से यह अत्यन्त करुण दृश्य देखकर बलराम-कृष्ण सोचने लगे–

"जल के बुलबुले-सा कैसा क्षणभंगुर ये जीवन !
मेघ-धनुष्य के रंग-सी कैसी अनित्य चंचल लक्ष्मी !
स्वजनों का संगम भी स्वप्न समान क्षणिक !"

महलों के सोने के कंगुरे भी कोयले-से काले होने लगे। महल भी राख के ढेर में बदलने लगे। कैसी विडम्बना ! तीनों लोकों को जीतने वाले महाशक्तिशाली भी जलती हुई द्वारका को शान्त न कर सके। अपने माता-पिता को भी न बचा सके ! जिनेश्वर भगवंत का वचन वास्तव में अटल, अकाट्य होता है।

सत्य है कि पर्वत को भेदने वाले समुद्र के तीव्र प्रवाह को रोका जा सकता है। किन्तु पूर्व में किये गये शुभाशुभ कर्मों के परिणाम (फल) को कोई नहीं रोक सकता। इस बात को प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए कृष्ण ने बलराम से पूछा–

"बन्धु ! असहाय होकर अब हम कहाँ जायें?"

बलराम ने कहा–"दक्षिण-तट स्थित पाण्डवों की नगरी पाण्डु-मथुरा की ओर चलते हैं।" दोनों ने पाण्डु-मथुरा की ओर प्रयाण किया।

इधर जलती हुई द्वारका नगरी में बलराम का पुत्र कुब्जवारक अपने महल की छत पर चढ़कर उच्च स्वर में बोलने लगा–"मैं इसी भव में मुक्ति प्राप्त करने वाला हूँ। ऐसा मुझे श्री नेमि प्रभु ने कहा था। यदि यह बात सच है तो मैं अग्नि में क्यों जलूं?"–कुब्जवारक को इस तरह बोलते हुए देखकर जृभंक देवों ने उसे उठाकर प्रह्लव देश में विचरते श्री नेमिनाथ भगवान के पास छोड़ दिया और उसने वहाँ प्रव्रज्या ग्रहण की।

नगर भस्म होने से बलराम-कृष्ण की रानियाँ और यदुओं की स्त्रियों ने अनशनपूर्वक स्वर्ग प्राप्त किया। द्वैपायन देव ने करोड़ों यादवों को भस्म कर दिया। इस भयंकर अग्नि-काण्ड से छः माह में सम्पूर्ण (पूरा) नगर नष्ट हो गया। तत्पश्चात् दुष्ट द्वैपायन ने समुद्र के जल में द्वारका को डुबा दिया।

कितना भयंकर विनाश हुआ ! वसुदेव-देवकी सहित करोड़ों यादव और असंख्य पशु इस अग्नि-काण्ड से अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए।

यदि द्वारका के विनाश का मुख्य कारण द्वैपायन का क्रोध था, तो उस क्रोध का मुख्य कारण शांब-प्रद्युम्न आदि कुमारों द्वारा (होश खोकर) किया हुआ मदिरा-पान था।

अतः दुष्ट कौन हैं? द्वैपायन या मदिरा? शांब आदि कुमारों से पिटकर द्वैपायन क्रोधित हुए, और पिटाई का मुख्य कारण मदिरा थी।

यह सत्य है कि मदिरा-पान से बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं की प्रतिष्ठा फीकी हो गई है...... समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त लोग भी अपनी प्रतिष्ठा खो बैठे। स्वस्थ शरीर को अस्वस्थ बनाने वाली भी मदिरा ही है। ★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. कर्मों की गति न्यारी

द्वारका-विनाश के बाद बलराम एवं कृष्ण असहाय हो, अकेले ही हस्तिकल्प नगर के निकट आ पहुँचे। कृष्ण ने बलराम से कहा–"भाई ! मुझे खूब भूख लगी हैं। अब एक भी कदम चला नहीं जाता है।"

बलराम ने कहा–"बन्धु, इस नगर से भोजन लेकर मैं अभी आ रहा हूँ। तब तक तुम यहीं ठहरो।"

बलराम ने नगर में जाकर अपनी अँगूठी एक हलवाई को दी और बदले में स्वादिष्ट भोजन खरीदा। हाथ में पहने हुए कड़े के बदले मदिरा खरीदी। दोनों ने नगर के बाहर एक उद्यान में भोजन किया। जब पुण्यों का क्षय होता है तो त्रिखंड के अधिपति को भी भूख से तड़पना पड़ता है... प्यास से मरना पड़ता है... किसी हलवाई के सामने हाथ फैलाना पड़ता है।

तत्पश्चात् कृष्ण-बलराम दक्षिण दिशा की तरफ चल दिये। भयंकर ग्रीष्म-ऋतु, मध्याह्न का समय, लवण से भरपूर मदिरा पान, एवं गरिष्ठ भोजन से कृष्ण जब अत्यन्त तृषातुर हुए तो उन्होंने बलराम को बताया।

प्यास से व्याकुल कृष्ण वृक्ष की छाया तक पहुँचने में असमर्थ थे। बलराम ने कृष्ण से कहा–"कृष्ण ! मैं तुम्हारे लिए जल लेकर आता हूँ, तब तक तुम इस वृक्ष के नीचे विश्राम करो।" यह कहकर बलराम पानी की खोज में चल दिये। कौशाम्ब वन में एक वृक्ष की छाया में केवल पीताम्बर पहने हुए श्री कृष्ण पैर के उपर पैर चढ़ाकर सो गये। अत्यन्त परिश्रम से थके हुए प्यास से व्याकुल कृष्ण पलभर में ही गहरी नीदं सो गये।

इधर पानी की खोज में निकले बलराम आकाश की ओर देखते हुए वन-देवता को सम्बोधित करने लगे–"हे वनदेवता ! मेरे प्राणप्रिय बन्धु एवं विश्व-वल्लभ कृष्ण की आप रक्षा करना। ये बालक आपकी शरण में हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः एक माँ की तरह उसकी देखभाल करना।''–इस प्रकार आकाश एवं कृष्ण की ओर बार-बार देखते हुए बलराम पानी की खोज में आगे बढ़े।

अपने हाथों होने वाली कृष्ण की मृत्यु की भविष्यवाणी नेमि प्रभु के मुख से सुनकर जराकुमार बारह वर्ष से व्याघ्रचर्मं धारण करके जंगल में भटक रहा था। उसने दूर से ही पैर के उपर पैर चढ़ाकर सोये हुए कृष्ण को मृग समझा और निशाना लगाकर एक बाण छोड़ा। स न न न न न... बाण, कृष्ण के पैर को आर-पार बींध गया।

श्रीकृष्ण अचानक हड़बड़ाकर उठे और बोले–''अरे ! मुझ निरपराधी (निर्दोष) को किसने मारा ? आज तक किसी ने भी मुझ पर विश्वासघात से वार नहीं किया है ?'' दूर स्थित जराकुमार को (न पहचानने पर) कृष्ण ने सम्बोधित करते हुए कहा–''अरे ! तुम कौन हों ? अपना नाम और गोत्र तो बताओं ?''

दूरस्थ जराकुमार झाड़ियों में से निकलकर बोला–''मेरे पिता वसुदेव एवं माता जरा हैं और कृष्ण-बलराम का मैं सगा भाई हूँ। श्री नेमिनाथ के वचन सुनकर कृष्ण-रक्षा के लिए बारह वर्ष से इस जंगल में रहते हुए मैंने किसी मनुष्य को नहीं देखा। हे भद्र पुरुष ! आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? ये बताऐंगे?''

तब कृष्ण ने कहा–''आओ भाई ! मैं ही तुम्हारा भाई कृष्ण हूँ। जिसकी रक्षा के लिए बारह वर्ष से तुम इस जंगल में भटक रहे हो।''

यह सुनकर जराकुमार कृष्ण के निकट आया। कृष्ण को देखते ही जैसे उसके हृदय पर वज्रपात हुआ हो और वह चेतनाशुन्य होकर धरती पर लुढ़क गया। जैसे-तैसे चैतन्य पाकर जराकुमार करुण आक्रन्द करते हुए बोला–''कृष्ण ! आप यहाँ कैसे? क्या वास्तव में द्वैपायन ने यदुओं सहित द्वारका को जला डाला? क्या नेमि प्रभु की वाणी सत्य सिद्ध हुई?''

कृष्ण ने द्वारका-दहन का पूरा वृतान्त उसको सुनाया।–''जराकुमार आज तक मेरी रक्षा के लिए किये गये तुम्हारे सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए हैं। क्योंकि प्रभु ने जैसा कहा था, वैसा ही हो रहा है।'' द्वारका-दहन का हृदय-विदारक वृतान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुनकर शोकाग्नि से संतप्त जराकुमार रोने लगा।–"हाय ! अतिथी के रूप में आये सगे भाई का आतिथ्य मैंने मृत्यु की भेंट देकर किया। अब मैं कहाँ जाऊ ? मुझे कहाँ शान्ति मिलेगी ? अरे ! इस दुष्कृत्य के लिए तो नर्क की सजा भी मेरे लिये कम हैं। नर्क से भी अधिक कष्ट का अनुभव तो मैं अभी कर ही रहा हूँ। हे विधाता ! मुझ हत्यारे को आपने अभी तक जीवित क्यों रखा हैं ? मेरे प्राण ले लो। हे पृथ्वी ! इस पापी को तु अपने अन्दर समा ले। जब नेमि प्रभु ने मेरे ही हाथों बन्धु-हत्या की बात कही थी, उसी वक्त मैं मर जाता तो इस महापाप से अवश्य बच जाता।

इस प्रकार वृक्ष की प्रत्येक शाखाओं को, पशुओं एवं पक्षियों को शोकमय करते हुए, स्वयं विलाप करते हुए जराकुमार को कृष्ण ने कहा बन्धु ! तुम दुःख मत करो, क्योंकि भाग्य को परिवर्तित करने की शक्ति स्वयं देवों-देवेन्द्रों और देवाधिदेवों में भी नहीं होती। अब तुम इस कौस्तुभ (बाण-तरकश) का चिन्ह लेकर हमारे प्रति स्नेहित पांडवों के पास जाओ और उनसे हमारे अपराधों की क्षमा-याचना करते हुए द्वारका-दहन का सम्पूर्ण वृतान्त कह सुनाओ। तुम उल्टे पैरों से जाओ, ताकि बलराम को किसी मनुष्य के यहाँ आने का पता न चले। जाओ बंधु ! करोड़ो यादवों में से केवल तुम ही बचे हो।

इस प्रकार कृष्ण द्वारा बार-बार प्रेरित किये जाने पर जराकुमार ने हिचकियाँ लेते हुए कृष्ण के पैर से तीर खींच निकाला और कौस्तुभ लेकर बार-बार कृष्ण की ओर देखते हुए, उल्टे पैर पांडवों की नगरी पांडु-मथुरा की और प्रस्थान किया।

इधर बाण के प्रहार से अत्यन्त पीड़ित कृष्ण ने उत्तराभिमुख रहते हुए हाथ जोड़कर अरिहंतादि चारों की शरण स्वीकार करने के लिए सर्वप्रथम भगवान नेमिनाथ को प्रणाम किया। तत्पश्चात घास की शय्या पर लेटे हुए कृष्ण शांब-प्रद्युम्न और रुक्मिणी आदि प्रवजित हुए महात्माओं की अनुमोदना के साथ स्वदुस्कृत्य का पश्चाताप करने लगे।

इस प्रकार शुभ अध्यवसायों में स्थित श्री कृष्ण को पीड़ा के अतिरेक के साथ वायु का प्रकोप भी बढ़ने लगा और वे शुभ ध्यान से अशुभ ध्यान की ओर मुड़ गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारका की समृद्धि, द्वारका-दहन और द्वेपायन का क्रोध आदि उनके मानस पटल पर बार-बार आने लगा।–''मेरी सर्वनाश की जड़ द्वैपायन ही हैं। जिसने मेरी यह दुर्दशा की। आज से पहले कोई मनुष्य या देव भी मुझे परास्त नही कर सका था। यदि वो दुष्ट द्वैपायन अभी मेरे सामने आ जाये तो उसका पेट चिरकर द्वारका की सारी समृद्धि उसमें से निकाल दूँ।''

इसप्रकार तीव्र रोद्र ध्यान के अभ्यास से कृष्ण की आत्मा ने हजार वर्ष की आयु पूर्ण करके तीसरे नर्क की ओर प्रस्थान किया।

★ महायुद्धों में अकेले ही अनेकों को परास्त करने वाले कृष्ण जैसे महायोद्धा को सगे भाई के हाथों अत्यन्त तृषातुर अवस्था में मृत्यु प्राप्त हुई।

★ जिसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति हो जाती है, ऐसे पुण्यवान को वन में मरते समय कोई पानी पिलाने वाला भी न था।

★ सोने की द्वारका के स्वामी को वन में कष्ट झेलते हुए भटकना पड़ा।

★ हमेशा मणि-रत्नों के बहुमूल्य वस्त्र भरण धारण करने वाले को तन ठकने के लिए केवल एक पिताम्बर से काम चलाना पड़ा।

★ जिसके एक ही संकेत से हजारों सेवक सेवा में उपस्थित हो जाते हों एसे महापुरुष को घने जंगल में अकेले ही मृत्यु को स्वीकार करना पड़ा।

★ कमल-सी कोमल एवं नरम शय्या पर सोने वाले को मृत्यु के समय जंगली घास एकत्रित करके खुरदरी शय्या पर सोना पड़ा।

कर्म का उदय कब और कैसे जीव पर झपटता हैं, उसका यह जीवंत सत्य दृष्टान्त हमें सजग करने के लिए काफी नहीं हैं क्या ?

कर्म का न्याय सब के लिए समान हैं। चाहे कृष्ण की आत्मा हों या महावीर की। चाहे एक अदना आदमी हो या महान मनुष्य.... सब को स्वकृत कर्मों के अनुसार दंड भुगतना पड़ता है।

इसके बाद की कथा में तृषातुर कृष्ण के लिए पानी की खोज में गये बलराम जब पानी लेकर कृष्ण के पास लौटते हैं, तब की घटनाओं और बन्धु के प्रति असीमित अनुराग दर्शानेवाली विविध अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. अपूर्व भ्रातृ स्नेह

द्वारका-विनाश के पश्चात् (केवल पहिने हुए वस्त्रों से) बलराम एवं कृष्ण खाली हाथ कौशाम्ब वन आ पहुँचे। अत्यन्त तृषातुर कृष्ण के लिए बलराम पानी की खोज में निकल गये। इधर पैर पर पैर चढ़ाकर सोये हुए कृष्ण को मृग समझकर जराकुमार ने उन पर बाण छोड़ा। कृष्ण की मृत्यु हो गई। शोक-संतप्त जराकुमार ने पांडवों की पांडु-मथुरा नगरी की ओर प्रस्थान किया। जैसे-तैसे वह पांडवों के पास पहुँचा और उन्हें कोस्तुभ चिन्ह दिखाकर द्वारका-विनाश एवं कृष्ण की मृत्यु आदि के विषय में सम्पूर्ण वृतान्त कह सुनाया। अत्यन्त शोक से व्याकुल होकर उन्होंने कृष्ण का मृत्यु-कर्म किया। और निरन्तर एक वर्ष तक कृष्ण-वियोग से तड़पते हुए उन्हें बैरागी बनकर व्रत लेने की इच्छा हुई। भगवान नेमि-प्रभु ने चार ज्ञान से युक्त धर्मघोष मुनि को पांडवों के पास भेजा और पांडवों ने जराकुमार को राज्य सौंपकर धर्मघोष मुनि से दीक्षा ग्रहण की। कालान्तर में 20 करोड़ मुनियों के साथ उन्होंने शत्रुंजय पर्वत पर मोक्ष प्राप्त किया।

इधर, कमल-पत्र के पात्र में जल लेकर लौटते हुए दुष्ट पक्षियों के अपशुकन से चिन्तातुर बलराम, कृष्ण के पास पहुँचे। कृष्ण के उपर काली मक्खियों को भिनभिनाते देखकर बलराम ने कृष्ण के मुख उपर से वस्त्र हटाया। कृष्ण को मृत अवस्था में देखकर भंयकर क्रोध से उन्होंने सिंहनाद किया। जिससे पशु-पक्षियों सहित सम्पूर्ण जंगल कांप उठा। तत्पश्चात् बलराम उच्च स्वर में बोले-"प्राणों से भी प्रिय मेरे सोये हुए भाई को जिसने भी मारा है और जो वास्तव में वीर पुरुष का पुत्र हैं तो तुरन्त मेरे समक्ष उपस्थित हो। सज्जन मनुष्य, स्त्री को, बच्चे को ऋषि को और सोये हुए (व्यक्ति) मनुष्य को कभी नहीं मारता।" ऐसा कहकर कृष्ण के हत्यारे को ढूंढते हुए बलराम वन में भटकने लगे। फिर कृष्ण के पास लौटकर उच्च स्वर में विलाप करने लगे-"ओ यादवेश ! गणनीधि ! ! तुम कहाँ हो ? ओ प्राणप्रिय ! पहले मेरे बिना तुम एक क्षण भी नहीं रह सकते थे और आज तुम मेरे साथ बोलने के लिए भी तैयार नहीं हो। इतना नाराज क्यों होते हो? यदि मैंने कोई गलती की हो तो भी इतना अधिक समय क्रोध करना उचित

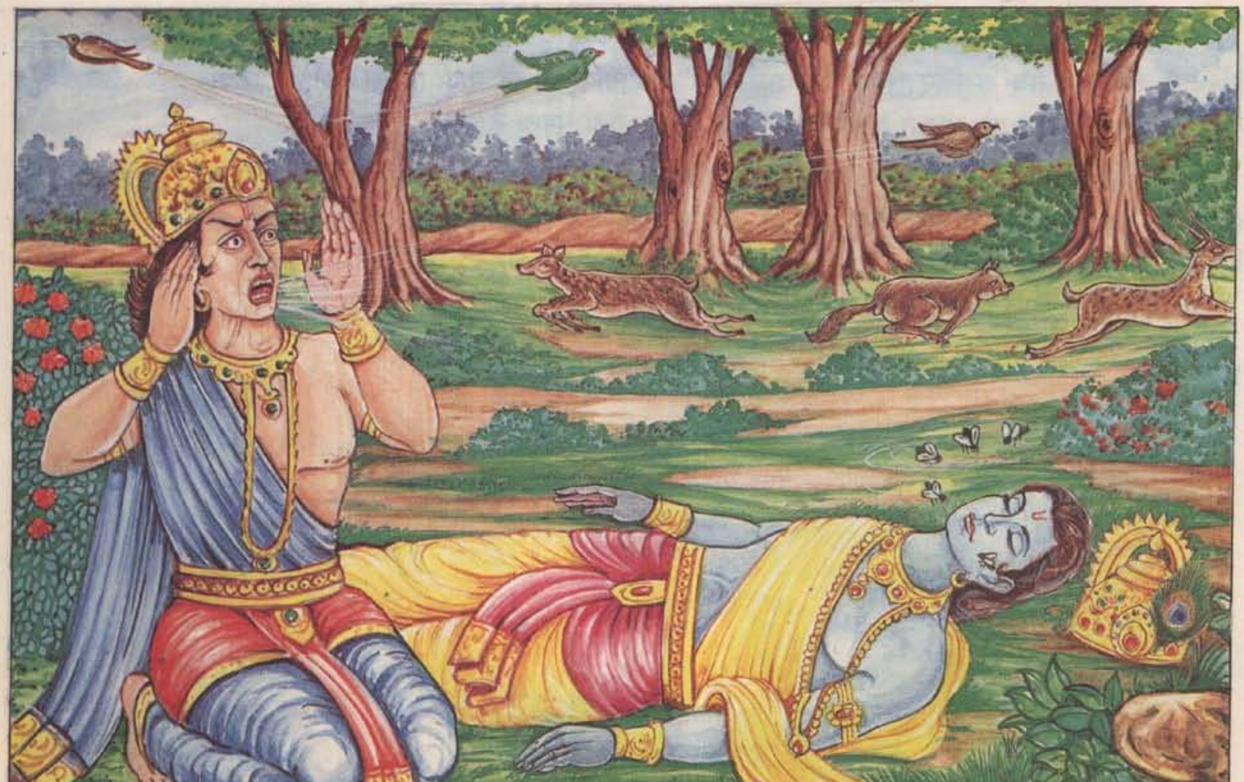

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। हे वनदेवियों ! मुझ पर दया करके मेरे भाई को समझाओं ... ! हे प्रिय बन्धु ! तुम्हारी ऐसी चेष्टा से तो मुझे सम्पूर्ण संसार शून्य ही नजर आता है। अतः कृपया करके उठकर खड़े हो जाओ। अतः लो ये जल ग्रहण करो। अभी सोने का समय नहीं है।"

इस प्रकार मृत कृष्ण से विनती करते हुए बलराम ने सारी रात बिता दी। भोर होने पर विक्षिप्तों की तरह विलाप करते हुए बलराम ने कृष्ण को जगाने का प्रयास किया–"उठो ... उठो बंधु ! अब धूप चढने लगी है। अभी तो हमें बहुत दूर जाना है।"

कृष्ण के प्रति अत्यन्त मोहासक्त बलराम, कृष्ण के मृत शरीर को अपने कन्धे पर उठाकर बड़बड़ते हुए वन में भटकने लगे। इसप्रकार भटकते-भटकते ग्रीष्म ऋतु बीत गई और वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई।

पहले बलराम के प्रति अत्यन्त प्रेम से वशीभूत होकर सारथी बने सिद्धार्थ नामक सगे भाई ने बलराम से दीक्षा-याचना की थी, तब बलराम ने कहा था–"कालान्तर में यदि तुम देव बनो तो मुझे प्रतिबोध करने अवश्य आना।" मरकर देव बने सिद्धार्थ ने इस समय अवधिज्ञान का उपयोग किया और मोहवश कृष्ण के मृत शरीर को कंधे पर उठाये हुए बलराम की दुर्दशा देखकर, उसे प्रतिबोध करने वह पृथ्वी पर आया। वह विभिन्न रूप धारण करके नई-नई तरकीबें आजमाने लगा। जैसे–

★ पत्थर पर कमल उगाना ...

★ दग्ध (जले हुये) वृक्ष को बार-बार पानी से सींचना ...

★ मृत गाय को बलपूर्वक घास खिलाना ... आदि टोटके उसने विभिन्न रूपों में बलदेव को दिखाये।

क्या पत्थर पर कमल उग सकता है ? क्या जले हुए वृक्ष को पानी से सीचंकर नवपल्लवित किया जा सकता है ? गायों के मृत शरीर कहीं घास खाते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

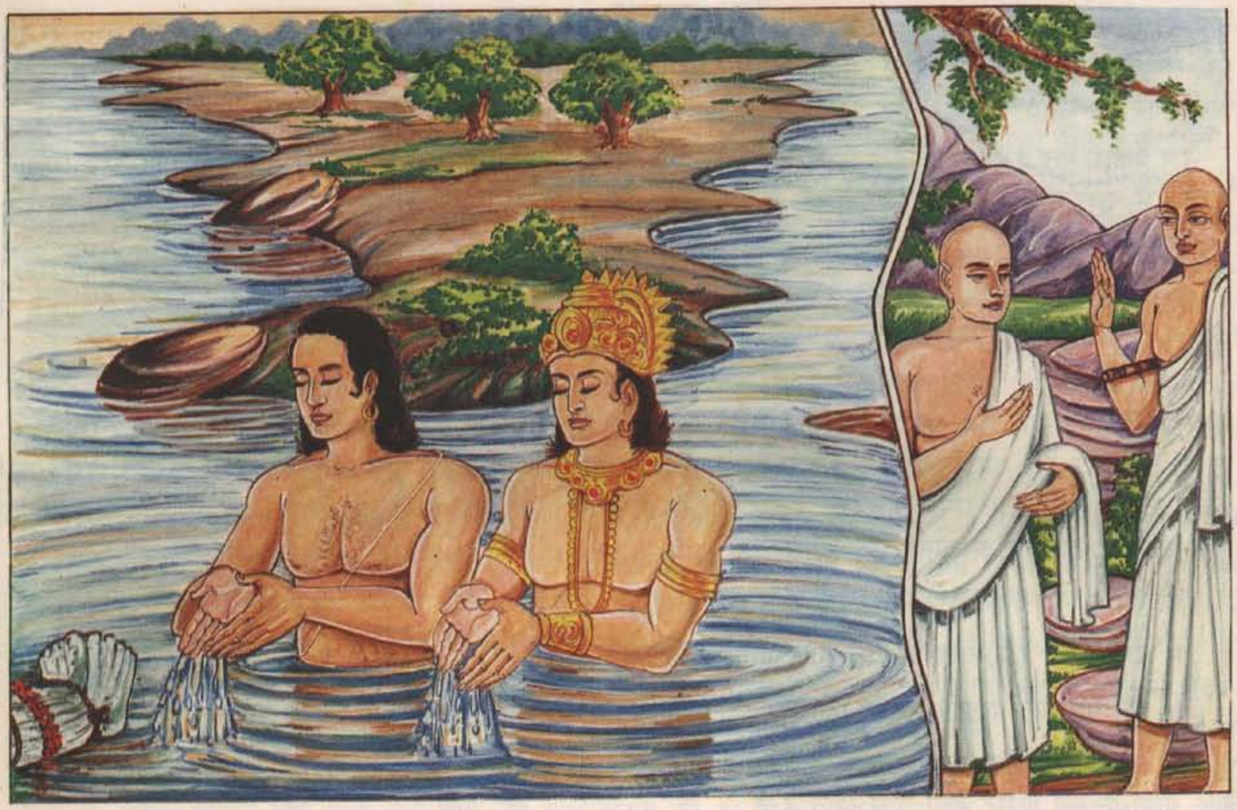

बलराम के इन प्रश्नों के उत्तर में सिद्धार्थ बोला–"तुम्हारे कंधे पर रखा मृत शरीर यदि जीवित हो जाये तो ये सब भी सम्भव है।" तब बलराम सोचने लगा–क्या मेरे छोटे भाई कृष्ण की मृत्यु हो चुकी है ? क्या मेरे कंधे पर उसका मृत शरीर है ? तभी सिद्धार्थ देव ने अपने असली रूप में प्रकट होकर अपना परिचय दिया और प्रतिबोध के लिए अपना आगमन बताया। बलराम इससे गले मिला और पूछा कि अब क्या करना चाहिए ? सिद्धार्थ ने उसे सर्व त्याग के पथ पर प्रवजित होने का श्रेष्ठ मार्ग दिखाया।

बलराम ने ये स्वीकार करके दो नदियों के संगम पर श्री कृष्ण का अन्तिम क्रिया किया। अर्थात् कृष्ण के शव को नदी में बहा दिया, तत्पश्चात् नेमिनाथ भगवान के भेजे हुए चारण मुनियों से बलराम ने दीक्षा ग्रहण की और गाँव-गाँव विहार करते हुए तुंगिका-शैल पर्वत के समीप आ पहुंचे। सिद्धार्थ देव भी उनकी सेवा के लिए हमेशा उनके निकट रहने लगे।

(इस प्रकार छः माह तक बंधु प्रेम से प्रेरित होकर कृष्ण के मृत शरीर को अपने कंधों पर उठाये हुए बलराम वन में भटकते रहे।

जीवित भाईयों के प्रति भी "मर जाये तो अच्छा" इस प्रकार की दुष्ट मनोवृत्ति वाले कलियुग के भाईयों को बलराम से अपूर्व बन्धु-प्रेम की प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए, जो कि मृत शरीर में भी अपने भाई को जीवित देखने की अभिलाषा रखता था।)

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. महिमा : कृष्ण नरसिंह की

तुंगिका पर्वत के शिखर पर बलदेवमुनि मासक्षमणादि करके उग्र तपस्या करने लगे। वन में लकडी काटने आने वाले लकड़हारों से जो कुछ भी भोजन मिलता उसे भिक्षा में पाकर पारणा करते और स्व-साधना में लीन हो जाते। शनै-शनै उग्र तपस्या करते हुए पर्वत के आसपास स्थित राज्यों में बलराम मुनि की प्रसिद्धि बढ़ने लगी।

"कोई महान तेजस्वी मुनि पर्वत पर उग्र तपस्या कर रहे हैं।"—लकड़हारों के मुख से यह सुनकर उन राज्यों के राजा सोचने लगे, हमारे राज्यों को हडपने के लिए कोई मनुष्य उग्र एवं उत्तम मन्त्र-साधना कर रहा है। इसलिए हम आज ही वहाँ जाकर उसे मार देंगें ताकि ऐसा कोई भय हमें न रहे।"

इसप्रकार सलाह करके सारे राजा एकत्रित होकर अपनी-अपनी सेना के साथ पर्वत पर आ पहुँचे। भक्ति भाव से प्रेरित होकर बलराम मुनि की सेवा में रहने वाले सिद्धार्थ देव ने भयंकर सिहों को उनकी तरफ छोड़ दिया। पूरा वातावरण सिंहनादों से भयंकर हो उठा। उन सिंहों को देखकर डरे हुए राजा बलराम मुनि को प्रणाम करके अपना अपराध स्वीकार करते हुए वापस चले गये।

तब से बलराम मुनि 'नरसिंह' नाम से प्रसिद्ध हुए। करुणानिधी बलराम मुनि की अति उग्र तपस्या ने जंगली जानवरों को बहुत अधिक प्रभावित किया। उनकी साधक देह से प्रभावित शांत-प्रशांत परमाणुओं ने सिंह-बाघ आदि अनेक क्रूर पशुओं का स्वभाव शान्त बना दिया। उनकी देशना के प्रभाव से अनेक प्राणी पापभीरू श्रावक बन गये। अनेक ढीठ प्राणी सरल स्वभाव के बन गये। अनेक पशुओं ने मांस-भक्षण त्याग दिया एवं अनेकों ने अनशन व्रत स्वीकार कर लिया।

इसप्रकार बलराम मुनि की सूक्ष्म साधना से जंगल में मंगल हो गया। साधना और देशना से भावुक बने वन्य जीव उनकी सेवा में तत्पर रहने लगे। स्वआचारों में सुस्थित मुनि वन में रहते हुए अपने-परायों का भी कल्याण करते हैं। यह दृष्टान्त इस बात का साक्षी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

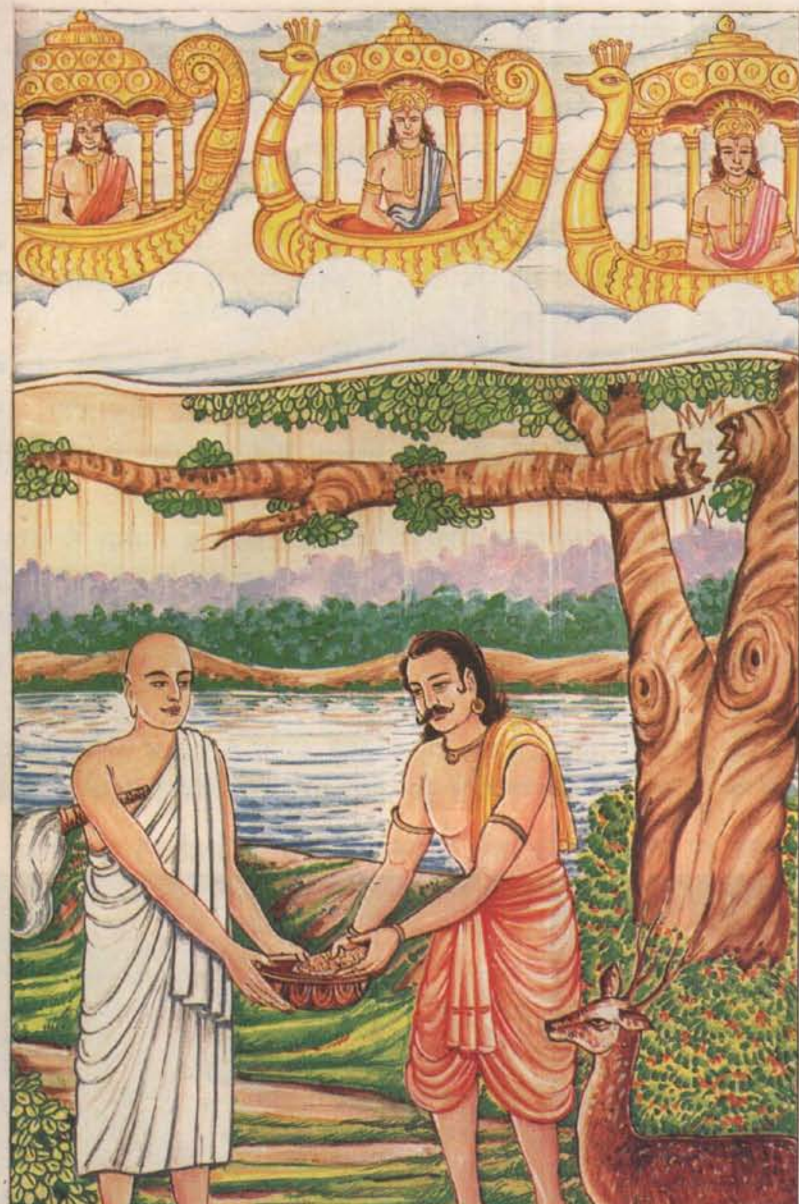

शास्त्रानुसार मुनि का यथाशक्ति आचारमय जीवन ही ऐसा होता है जिसके द्वारा अपने-पराये का कल्याण होता रहे। परिहत के लिए मुनि को ढिंढोरा पीटने की आवश्यकता नहीं है। पर हित के बहाने शास्त्रनिरपेक्ष संसार में कुछ मुनि शामिल हो तो गये हैं ... किन्तु परहित तो क्या, वे स्वहित में भी चूक गये हैं।

इसप्रकार प्रतिदिन पशुओं की पर्षदा को प्रतिबोध करते हुए बलराम मुनि को एक बार पात्रा आदि का प्रतिलेखन करते देख पूर्व भव का अनुरागी मुनि का पक्का भक्त एक मृग लकड़हारों को देखकर मुनि के पास आया। और मुनि के चरणों को मस्तक से स्पर्श करते हुए मुनि को भिक्षा के लिए पधारने के लिए विनती करने लगा। प्रतिदिन के अभ्यास से मृग का उद्देश्य समजकर मुनि भी उसके पीछे जाने लगे। मृग उस स्थान पर रुका जहाँ रथकार (लकडहारा) था। रथकार ने भी अपने भाग्य को सराहा, और मुनि से भिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की।

''अतिथि देवो भवः''–इस सांस्कृतिक वाक्य को चरितार्थ करते हुए लकडहारा भी अत्यन्त अनुराग एवं प्रसन्नमन से भिक्षा देना आरम्भ करता है। मृग भी पशु-भव मिलने से स्वयं सुपात्र दान से वंचित होकर स्व-निंदा के साथ, इन दोनों पुण्यशालिओं की (भावुक होकर) अनुमोदना करने लगा। तभी जिस वृक्ष के नीचे मुनि गोचरी ग्रहण कर रहे थे, उस वृक्ष की आधी कटी हुई शाखा तेज आंधी से टूटकर उन तीनों पर गिरी। शाखा के गिरते ही तीनों की मृत्यु हो गई। और 'ब्रह्मलोक' नामक देवलोक में 'पद्ममोत्तर' विमान में उत्पन्न हुए। इस प्रकार बलराम मुनि १२०० (बारह सौ) वर्ष की आयु बिताकर स्वर्गगामी हुए।

कृष्ण की कुल आयु १००० वर्ष थी बलराम की कुल आयु १२०० वर्ष थी। जबकि देव के रूप में उनकी वर्तमान आयु १० सागरोपम है। कृष्ण आगामी चोबीसी में अमम नामक तीर्थंकर होंगे, तब बलराम देवलोक से आकर मनुष्य भव में उनके शासन में सिद्धगति को प्राप्त करेंगे।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. कृष्ण का क्रोध-विजय

अचानक अनियन्त्रित घोड़ों ने दारुक, सत्यक, बलराम और कृष्ण इन चारों मित्रों को दूर-सुदूर जंगल (वन) में पहुँचा दिया।

अंधेरा होने लगा था। प्रत्येक मित्र एक-एक प्रहर तक अन्य तीनों की रक्षा करेगा-इस प्रकार का निर्णय लेने के बाद सर्वप्रथम दारुक को रक्षक नियुक्त किया गया। अन्य तीन मित्र बरगद के नीचे गहरी नींद सो गये।

थोड़ी देर बाद वहाँ एक पिशाच आया जिसकी लाल-लाल आँखों डरावनी प्रतीत होती थी। बाल भी भयंकर लग रहे थे। दारुक के पास आकर इस भयंकर पिशाच ने कहा–"मैं बहुत भूखा हूँ। तुम सबको खाने आया हूँ।" दारुक ने कहा–"इन लोगो की रक्षा के लिए मुझे नियुक्त किया गया है। अतः इनको खाने से पहले तुम्हें मेरे साथ युद्ध करना होगा।"

दोनों में युद्ध आरम्भ हो गया। पिशाच की तुलना में दारुक निर्बल था। ज्यों-ज्यों दारुक पीछे हटता गया, त्यों-त्यो पिशाच उसे चिढ़ाता रहा। अतः दारुक दुगुने क्रोध से पिशाच क़े समक्ष उच्च स्वर में चिल्लाने लगा। वह पिशाच को गालियाँ देने लगा। इस प्रकार दारुक का क्रोध बढ़ने लगा दारुक का क्रोध बढ़ने के साथ ही पिशाच अपने शरीर की उंचाई बढ़ाने लगा। और प्रथम प्रहर के समाप्त होने तक तो उसका शरीर ताड़-सा हो गया। पिशाच से परास्त होकर निर्बल दारुक ने प्रथम प्रहर जैसे-तैसे बिताया।

दूसरे प्रहर में सत्यक को जगाकर दारुक सो गया। पिशाच ने उसको भी उसी प्रकार परास्त किया। जैसे-तैसे सत्यक ने द्वितीय प्रहर व्यतीत किया और बलराम को जगाकर स्वयं सो गया। तीसरे प्रहर के रक्षक बलराम को भी शक्तिशाली पिशाच ने निर्बल बना दिया। उसे हैरान-परेशान कर दिया। उस प्रकार तीनों मित्रों की हालत एक-सी हो गई।

अब कृष्ण की बारी थी। बलराम, कृष्ण को जगाकर स्वयं सो गया। पिशाच ने कृष्ण से भी कहा–"मैं भूखा हूँ। तुम्हारे तीनों सोये हुए मित्रों को 'स्वाहा' करना चाहता हूँ" तब कृष्ण ने कहा–"इन मित्रों की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। अतः मुझे परास्त किये बिना तुम इनको स्पर्श तक नहीं कर सकते।"

अन्त में दोनों के बीच युद्ध शुरू हो गया, भुजाओं को टकराते हुए और पृथ्वी को कँपाते हुए दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। लेकिन कृष्ण की युद्ध नीति अनोखी थी। ज्यों-ज्यों पिशाच युद्ध के रंग में आने लगा, कृष्ण उसकी प्रशंसा करने लगे– "ओह ! कितना तेज पिशाच है ! और कितनी निराली युद्ध कला ! शाबाश ...... !!! इस प्रकार कृष्ण ज्यों-ज्यो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

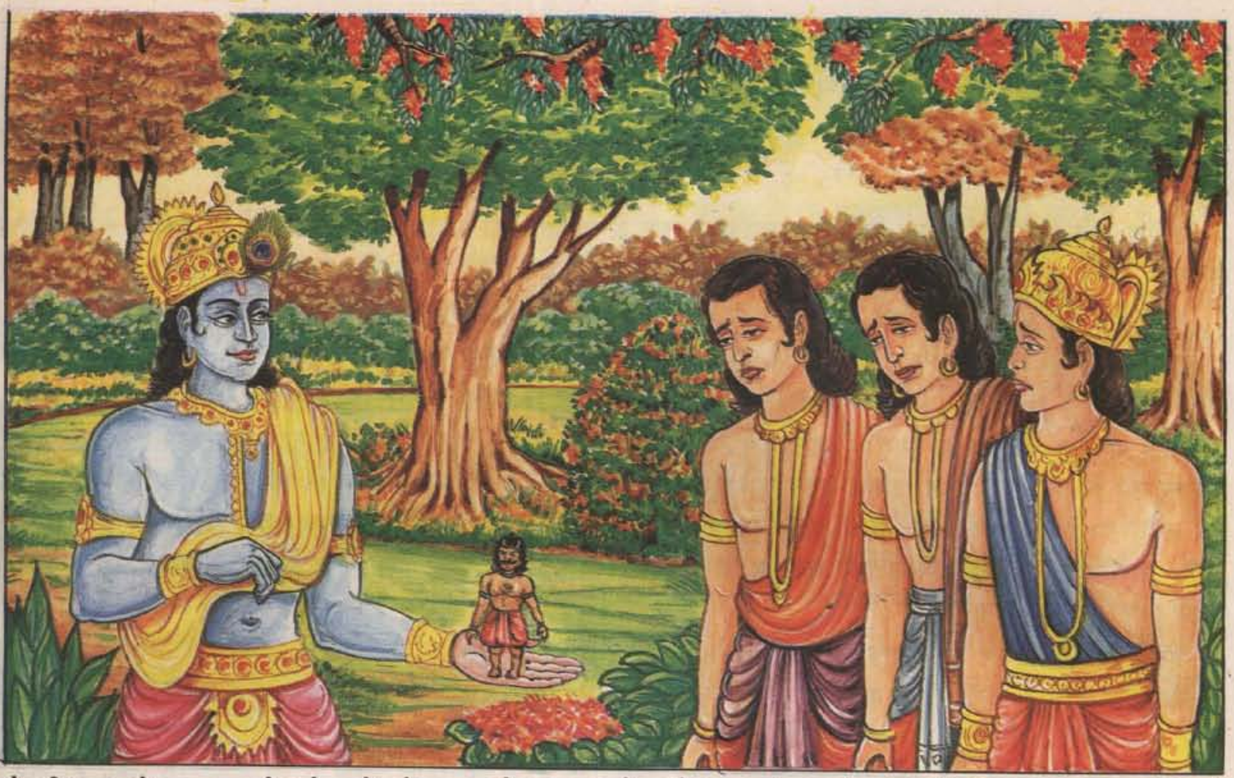

कोप-पिशाच को प्रसन्न करते गये, त्यों-त्यों उसका देह (कद) छोटा होता गया। प्रहर के अन्त में पिशाच मच्छर-सा छोटा हो गया और कृष्ण ने उसको अपनी नाभि में डाल दिया।

प्रातः काल कृष्ण ने अपने तीनों मित्रों को जगाया। पीड़ा से तड़पते हुए किसी के हाथ, किसी के पैर, तो किसी की पीठ रक्त रंजित एवं खरोंचों से युक्त देखकर कृष्ण ने उनसे पूछा–"तुम लोगों की यह हालत किसने की?" तब उन्होंने कहा–"हम लोगों को किसी शक्तिशाली पिशाच ने घायल किया है।"

कृष्ण–"अच्छा ?"

तीनों मित्र–"क्या तुम्हारे पास वो पिशाच नहीं आया था?"

तब मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कृष्ण ने उस पिशाच को अपनी नाभि में से निकालकर दिखाया। "ताड़-सा ऊँचा पिशाच बिल्कुल मच्छर-सा कैसे हो गया?" सभी आश्चर्यचकित हो गये।

तब कृष्ण ने सबको समझाते हुए कहा–"पिशाच के रूप में स्वयं क्रोध हमारे पास आया था। वह ज्यों-ज्यो युद्ध के रंग में आने लगा, त्यों-त्यों तुम लोगों का क्रोध बढ़ने लगा। और देखते ही देखते वह ताड़-सा लम्बा होकर तुम लोगों का अपमान करने लगा (क्योंकि "कोपः कोपेन वर्धते") और उसने तुम लोगों को परास्त कर दिया।"

"जब मैंने उसके साथ-साथ युद्ध किया तो मैंने उसे उत्कट क्षमा-शस्त्र द्वारा पराजित किया। अर्थात् उसके समक्ष क्रोधित होने के स्थान पर मैं उसे प्रशंसा के मधुर शब्दों से नवाजने लगा। जिससे उसका देह कम होता गया। अन्त में वो इतना छोटा हो गया कि मैंने उसे नाभि में छिपा दिया। क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिए क्षमा शस्त्र ही कामयाब होता है। कोपः क्षान्त्यैव जीयते।

यह सुनकर तीनों मित्र कृष्ण की प्रशंसा करने लगे। जो लोग क्रोध अधिक करते हैं, उनको दारुक आदि की तरह बहुत कष्ट सहने पड़ते हैं। सचमुच, क्रोध-रक्त-पिपासु पिशाच है। जो मनुष्य के शरीर में बहते हुए रक्त को चूस लेता है अर्थात् उसे खोखला कर देता है। और रक्त के अभाव में रोग-प्रतिकारक शक्ति क्षीण हो जाती है जिसके कारण विभिन्न प्रकार के रोग लग जाते हैं। मानसिक शान्ति नहीं मिलती है।

जिस प्रकार कृष्ण ने कोप-पिशाच को प्रशंसा के मधुर वचनों से परास्त किया, ठीक उसी प्रकार यदि क्रोधी व्यक्ति के गुणों को खोजकर उसकी प्रशंसा की जाये तो क्रोधी व्यक्ति का पर्वत-सा क्रोध अणु-समान छोटा होकर लुप्त हो जायेगा।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. धर्म-खुमारी (धर्म-शौर्य)

मथुरा नगरी के राजा का पुरोहित इन्द्रदत्त अपने महल के गवाक्ष में बैठा था। तभी उसने थोड़ी दूर से आते हुए एक जैन साधु को देखा। पुरोहित साधु-द्वेषी था। जैसे ही वो साधु वहाँ से गुजरने लगे, द्वेष बुद्धि से पुरोहित ने उसके मस्तक पर आये उस तरह खिड़की से पैर लटका दिया।

महात्मा तो इस अपमान को मन पर लाये बिना अपने स्थान को पहुँच गये।

परन्तु इस नगरी के नगर सेठ पक्के श्रावक (धर्मात्मा) थे। पुरोहित द्वारा हुए मुनि के अपमान से उनका रोंया-रोंया क्रोध से सुलगने लगा।

उन्होंने प्रण किया–साधु-द्वेषी इस पापात्मा का पैर यदि मैंने नहीं कटवाया तो मेरा धर्म एवं जन्म दोनों व्यर्थ हैं।

इस दुष्ट का पैर कटवाकर ही रहूँगा–मनोमन यह प्रण करके सेठ हमेशा पुरोहित की कमजोरियाँ तलाशने लगा। पर कई दिनों तक ऐसी कोई भी कमजोरी नजर न आने से नगर सेठ उपाश्रय में विराजमान किसी आचार्य भगवन्त के पास गये और अपने प्रण के विषय में उन्हें बताया तब आचार्य भगवन्त ने सेठ से कहा–"श्रावकजी ! सहन करना तो हमारा धर्म है। सम्मान और अपमान के अवसरों में समभाव रहना ही हमारी साधना है। अतः ऐसा प्रण करने की कोई आवश्यकता न थी।"

तब सेठ ने कहा–"प्रभु ! मुनि का जो अपमान हुआ, मुझसे देखा नहीं गया। इसी कारण मैंने यह प्रण किया है। गुरुदेव ! साधु के अपमान का फल यदि इस पुरोहित को नहीं दिया गया तो अन्य नगरवासी भी बेशर्म होकर साधुओं की उपेक्षा करेंगे जो कि हम लोगों के लिए लांछन होगा। क्योंकि साधु का अपमान धर्मशासन का अपमान हैं, इसलिए कृपया करके कोई उपाय बताइये, अन्यथा प्रण पूरा किये बिना मैं चैन से कैसे जी सकता हूँ? ऐसा जीवन किस काम का? जो धर्म की अवहेलना न टाल सका?"

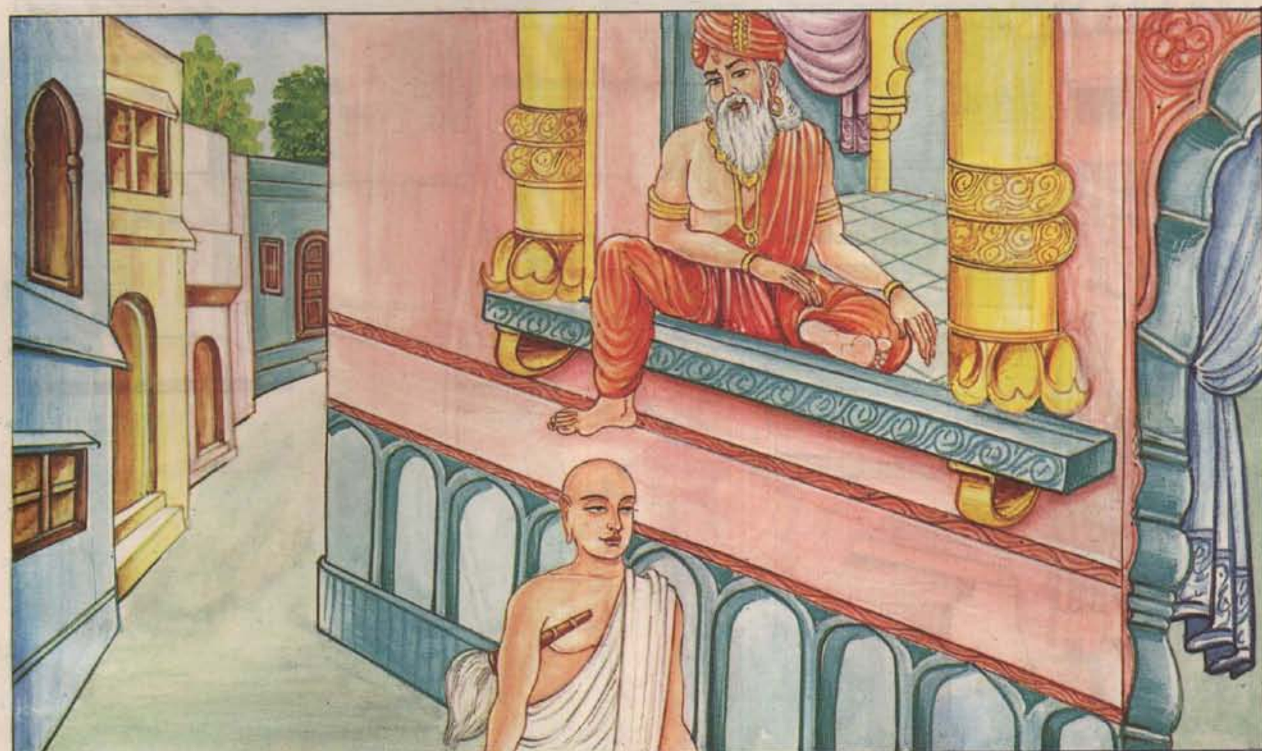

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार बार-बार प्रार्थना करने से सूरी देव ने सेठ से पूछा–''इस समय पुरोहित के घर क्या चल रहा है, ये मुझे बताइये।''

सेठ ने कहा–''पुरोहित ने अपना नया निवास स्थान बनवाया है जहाँ कल राजा को सपरिवार भोजन के लिए आमन्त्रित किया गया है।''

यह सुनकर सेठ के अत्यन्त आग्रह और दाक्षिण्य से प्रभावित होकर सूरीदेव बोले–''आप एक काम करिये। राजा जब भोजन के लिए पुरोहित के महल के निकट पहुँचे तब उनका हाथ पकड़कर अन्दर प्रवेश करने से रोक देना, और ठीक उसी समय मन्त्र शक्ति से मैं महल को धराशायी कर दूँगा।

और अगले (दूसरे) दिन ऐसा ही हुआ। जैसे ही सेठ ने राजा का हाथ पकड़कर मकान के भीतर प्रवेश करने से रोका, तभी महल गिरकर मलबे में परिवर्तित हो गया।

तत्पश्चात् सेठ ने राजा से कहा कि आपकी हत्या करने के लिए पुरोहित ने यह षड्यन्त्र रचा था। अन्यथा नया बना हुआ महल कैसे अचानक टूटकर गिर गया?

यह सुनकर क्रोधित राजा ने पुरोहित को बँधवाकर सेठ को सौंपते हुए कहा–''आप इसे जो दण्ड देना चाहें दे सकते हैं।'' सेठ भी यही चाहते थे।

सेठ ने पुरोहित को साधु के अपमान के विषय में स्मरण कराया और जिस पैर को साधु के ऊपर लटकाया था, उसे काटने के लिए एक विशेष यन्त्र-स्टैण्ड बनवाया एवं उसका पैर उस पर रखवा दिया।

अत्यन्त भयभीत पुरोहित ने सेठ से अपने ऊपर दया करने के लिए प्रार्थना की और कहा कि अब कभी भी मैं किसी साधु का अपमान नहीं करूँगा। केवल एक बार मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार पुरोहित की करुण वाणी सुनकर दयालु सेठ ने उसे छोड़ दिया। जैनों की यह अद्‌भुत विशेषता है कि वे क्रोधित भी हो तो शीघ्र ही करुणामय हो जाते हैं।

जिसके रोंये-रोये में धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा थी ऐसे सेठ का प्रण पुरोहित को मुक्त करने से अधूरा रह जाता। इसलिए सेठ ने पुरोहित की आटे की प्रतिमा बनवाई और इस प्रतिमा का पैर काटकर उसका प्रण पूरा किया।

धर्म के लिए मुक्त मन से धन खर्च करने वाले बहुत हैं। किन्तु समय आने पर धर्म के लिए प्राणों की बाजी लगाने वाले बहुत कम हैं।

धर्म रक्षा, तीर्थं रक्षा, संस्कृति रक्षा या देश रक्षा, समस्या कोई भी हों, जब तक इन क्षेत्रों में सत्य के दृढ़ समर्थक नहीं होंगे, तब तक देश की सु-संस्कृति नहीं बनेगी।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. दिगम्बर मत के आद्य प्रणेता

इक्कीस हजार वर्ष तक निरन्तर चलने वाले जिन-शासन को काला धब्बा लगानेवाली इस कलंक-कथा को उत्तराध्ययनसूत्र की टीका में महोपाध्याय श्री भावविजय जी महाराज ने अपने शब्दों में इसप्रकार व्यक्त किया है–

श्री वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष पश्चात् घटित यह एक सत्य घटना है।

रथवीरपुर नगर के राजा के समक्ष शिवभूति नामक सहस्र योद्धा (जो युद्ध में अकेले हाथ एक हजार योद्धाओं से लड़ सकें।) सेवा के लिये उपस्थित हुआ। राजा ने उसकी परीक्षा लेने का निश्चय किया।

कृष्णपक्ष की चर्तुदशी (दीपावली से एक दिन पहले) राजा ने उसे बुलाकर कहा कि आज रात श्मशान में तुम्हें श्मशान-देवी को एक पशु की बलि देनी है। यह कहकर राजा ने उसे एक पशु और मदिरा से भरा एक घड़ा दिया।

धीर-वीर शिवभूति भी अकेले ही उस रात एक बकरे का वध करके श्मशान-देवी के मंदिर में बलि चढ़ाने गया। भूख से व्याकुल शिवभूति ने बलि चढ़ाकर निर्भयता से वही मांस का भोजन किया। राजा ने उसे भयभीत करने के लिए गुप्त रूप से अपने आदमी भेजे थे। जो कि वहाँ आसपास छिपकर लोमड़ी और भैरव की भयंकर आवाजे निकालने लगे। फिर भी शिवभूति को भय, स्पर्श तक न कर सका। राज-पुरुषों ने राजा के पास जाकर सारी हकीकत बतायी। शिवभूति की वीरता से प्रसन्न होकर राजा ने उसे अच्छी तनख्वाह पर नौकरी दे दी। शिवभूति भी हमेशा राजा की सेवा में उपस्थित रहने लगा।

एक बार राजा ने सेनापति आदि सैन्य को मथुरा जीतने का आदेश दिया। सैन्य के साथ सेनापति ने मथुरा नगरी की ओर प्रयाण किया। परन्तु .... रथवीरपुर नगर से बाहर निकलने के बाद वे लोग परस्पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार करने लगे कि मथुरा तो उत्तर ओर दक्षिण दोनों तरफ है, तो कौन-सी मथुरा जीतने का आदेश राजा ने दिया है।

सभी दुविधा में पड़ गये। अब क्या करें ! चूँकि राजा का तानाशाही स्वभाव सब जानते थे, अतः कोई दूत राजा के पास भेजकर समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता था।

परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि न आगे बढ़ा जा सकता था, न पीछे हटा सकता था। तभी शिवभूति वहाँ आ पहुँचा और सैनिकों को विश्राम अवस्था में देखकर सेनापति से पूछा—"क्या कुछ (अशुभ) 'अपशुकन हुआ है' वास्तविकता क्या है ?" सेनापति ने दो मथुरा से उत्पन्न समस्या उसे बतायी। वीर शिवभूति ने कहा—"चिन्ता क्यों करते हैं ? हम दोनों मथुरा जीत लेंगे ?"

सेनापति ने कहा—"दोनों मथुरा जीतने के लिए हमारी सेना बँट जायेगी और एक भी मथुरा जीतना कठिन हो जायेगा। एक मथुरा जीतने में इतना अधिक समय लग जायेगा कि दूसरी मथुरा जीतना अत्यन्त कठिन होगा।

तीव्र बुद्धि एवं बल से गर्जना करते हुए शिवभूति बोला—"यदि ऐसा ही है तो जो मथुरा अजेय हो, उसे जीतने का काम मुझे सौंपा जाये।"

तब सेनापति ने दूर स्थित मथुरा को जीतने का काम शिवभूति को सौंपा। शिवभूति ने यह आदेश स्वीकार कर दक्षिण मथुरा की ओर प्रयाण किया और वो मथुरा राज्य के प्रत्येक प्रान्त एवं गाँव जीतता हुआ मथुरा के किले के निकट आ पहुँचा। अपने बल एवं बुद्धि से अजेय मथुरा दुर्ग को जीतकर उसने मथुरा राज्य पर कब्जा कर लिया और अपने स्वामी राजा के पास जाकर सारी बात बतायी। राजा ने प्रसन्न होकर उसे वरदान माँगने के लिए कहा।

कुछ सोचकर शिवभूति बोला—"मुझे स्वतन्त्रता दीजिए। अर्थात् मैं जहाँ चाहूँ घूम-फिर सकूं, और कोई भी वस्तु ग्रहण करूँ तो मुझे रोका न जाये।"

सत्यप्रतिज्ञ राजा ने उसको ऐसी ही स्वतन्त्रता प्रदान कर दी।

अब शिवभूति भी इच्छानुसार सर्वत्र नगर में घूमने लगा।

कभी-कभी वो दिन-रात जुआरियों के साथ जुआ खेलता, तो कभी शराब पीकर शराबियों के साथ अशिष्ट हरकते करता, कभी वेश्यागमन करता, तो कभी नगर के जल-स्थानों में जल-क्रीड़ा करने लगता। कभी-कभी नगर के उद्यानों में इच्छानुसार गुलदस्ते बनाकर खेलने लगता है। इस प्रकार इच्छानुसार बर्ताव करते हुए शिवभूति देर रात घर जाने लगा, तो कभी घर जाता ही नहीं था।

शिवभूति की पत्नी सती थी। अतः जब तक शिवभूति घर नहीं पहुँचता, तब तक न तो वह खाना खाती थी और न ही सोती थी। प्रतिदिन क्षुधा एवं अनिद्रा से पीड़ित होकर एक दिन अवसर देखकर उसने अपनी सास से कहा—"माताजी ! आपका पुत्र हमेशा देर रात घर लौटता है, जिसके कारण मैं परेशान हो जाती हूँ. तब सास ने कहा—बेटी ! आज तुम सो जाना, जब तक शिवभूति नहीं आता, तब तक मैं जागूगीं।" ऐसा कहकर माताजी ने दरवाजा बन्द कर दिया और शिवभूति की प्रतीक्षा करने लगी। शिवभूति घूमता-फिरता आधी रात को घर आया और बोला—दरवाजा खोलो। उसकी माताजी ने अन्दर से उत्तर दिया—"यहाँ कोई दरवाजा नही खुलेगा। (अभी जहाँ भी दरवाजा खुला हो, वहाँ तुम जाओ।")

इसप्रकार माता द्वारा अपमानित स्वाभिमानी शिवभूति सोचने लगा कि स्वयं माता द्वारा तिरष्कृत होकर अब मैं कहाँ जाऊ ? इस प्रकार विचार करते हुए, घूमते-फिरते भाग्य से साधुओं के खुले उपाश्रय में वो जा पहुँचा। उस समय वहाँ कृष्णाचार्य विराजमान थे, शिवभूति ने उनको प्रणाम कर दीक्षा के लिए प्रार्थना की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

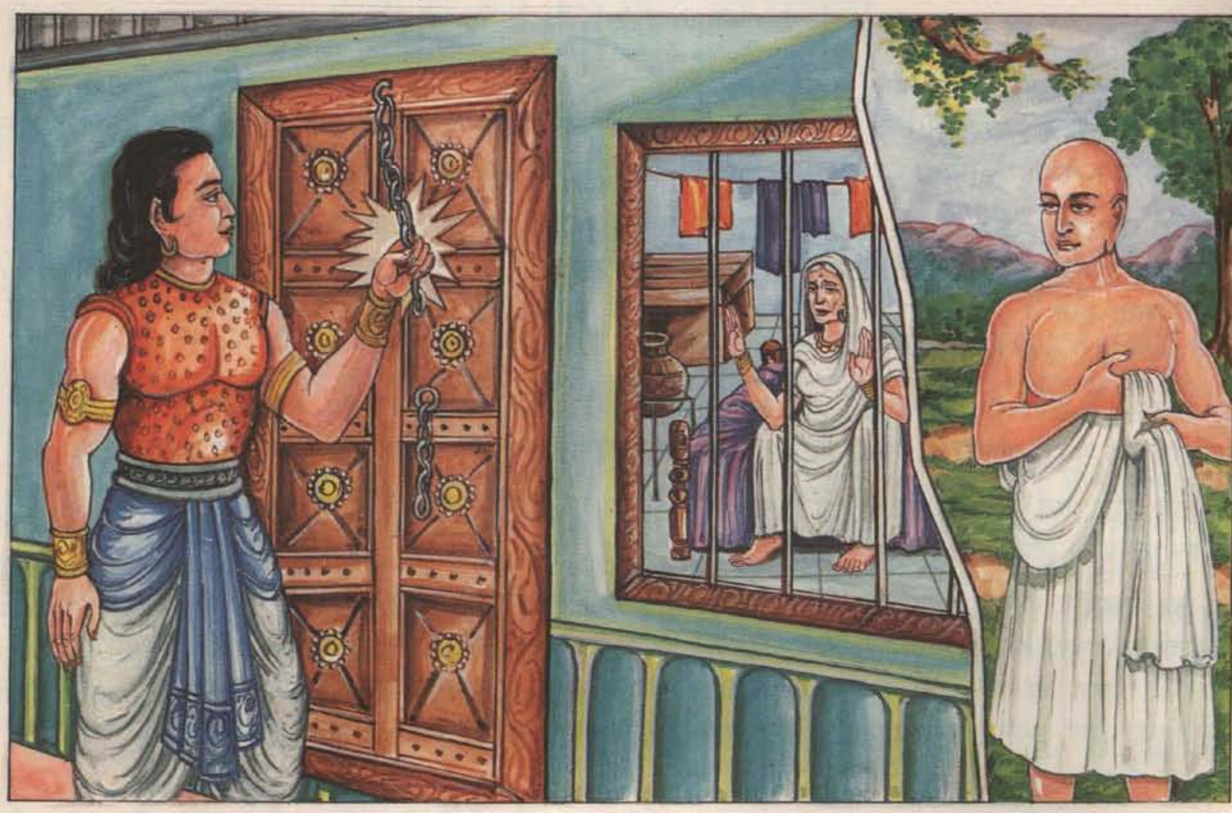

कृष्णाचार्य ने दीक्षा देने से मना कर दिया। अतः शिवभूति ने स्वयं अपने हाथों से केशलुचन किया। तब गुरुजी ने उसको रजोहरण आदि साधु-वेष दिये। उसको दीक्षित हुआ जानकर प्रातः राजा उपाश्रय में आये और उसको झिडकते हुए कहा–"मुझसे पूछे बिना व्रत स्वीकार क्यों किया ?"

शिवभूति ने कहा–"आपने मुझे सब प्रकार की स्वतन्त्रता का वरदान दिया है। अतः मैंने व्रत स्वीकार किया और उसमें आपकी आज्ञा शामिल है।" यह सुनकर द्रवित राजा मुनि को प्रणाम कर लौट गया। आचार्य महाराज ने मुनिमंडल के साथ वहाँ से अन्य स्थान को विहार के लिए प्रयाण किया।

बहुत समय बाद विहार करते-करते आचार्य भगवन्त वापस उस नगर में आ पहुँचे। तब राजा शिवभूति मुनि को अत्यन्त प्रेम से अपने महल में ले गये और मुनि के मना करने के बावजूद भी उनको एक मूल्यवान रत्न-कंबल भेट दिया। शिवभूति कंबल लेकर उपाश्रय को आये, तब आचार्य भगवन्त ने स्नेह से उनको झिड़कत हुए कहा–"वत्स ! तुम्हें पता है न ? हम लोग बहुमूल्य बस्त्रादि नहीं रख सकते?"

इसप्रकार आचार्य भगवन्त द्वारा हित शिक्षा मिलने के बावजूद भी शिवभूति मुनि ने रत्न-कंबल का मोह नहीं त्यागा और उसे कहीं छिपा दिया।

इस मोह से शिवभूति मुनि विराधक न हो जाये–यह सोचकर जब शिवभूति मुनि कहीं बाहर गये, तब आचार्य भगवन्त ने उस रत्न-कंबल को ढूंढकर, उसे चौकोर टुकड़े करके प्रत्येक मुनि को बैठने का एक-एक आसन दे दिया। यह बात जानकर शिवभूति मुनि को बहुत दुःख हुआ और गुरुजी के प्रति आक्रोश रखते हुए वह आचार्य महाराज की कमजोरियों तलाशने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

W·10393

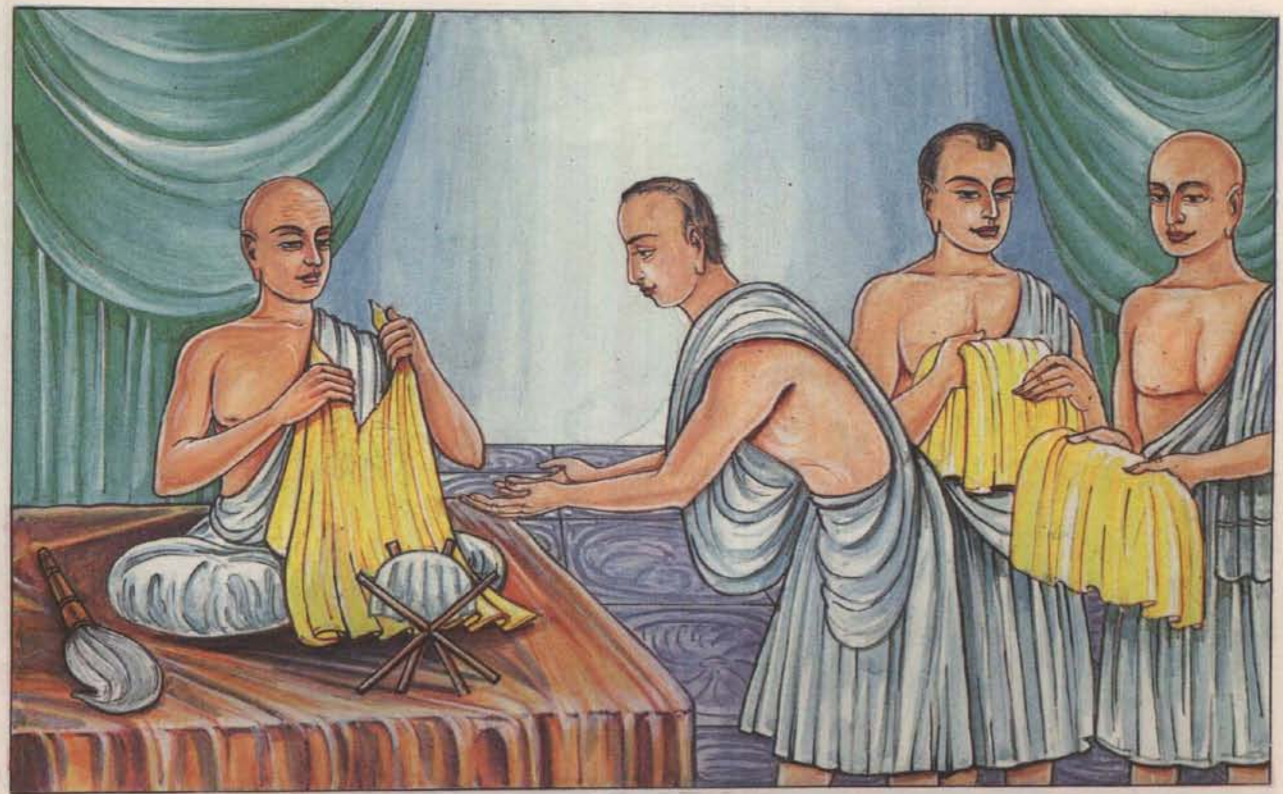

एक दिन गुरुदेव शिष्यों को आगम-शास्त्र का पाठ दे रहे थे जिसमें जिन कल्पिक (विशिष्ट तपोव्रत धारक) महात्माओं का वर्णन था। जिन-कल्पी दो प्रकार के होते हैं– एक सवस्त्र और दूसरे निर्वस्त्र। यह सुनकर शिवभूति मुनि बोले–"निष्परिग्रही कहे जाने वाले आजकल के साधुओं में तो जिनकल्पिक व्रत दृष्टिगोचर होता नहीं है ?

सूरीदेव बोले–"अभी भरत-क्षेत्र में विशिष्ट सत्त्व के अभाव में जिनकल्प व्रत स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रभू महावीर के प्रशिष्य श्री जम्बूस्वामी के निर्वाण पश्चात् जिन कल्प भी अस्त हो गया है। वर्तमान में उसका आचरण सम्भव नहीं है।" स्वच्छन्द मति शिवभूति मुनि बोले–"यह बात तो सत्त्व रहित साधुओं के लिए है मुझ जैसे सात्विक, (सत्त्वशाली) के लिए तो ये बाये हाथ का खेल है। यदि मुक्ति ही प्राप्त करनी है तो वस्त्र और पात्र का परिग्रह क्यों ? वस्त्र और पात्र से भी मुक्त हो जाना चाहिए?"

आचार्य भगवन्त ने समझाया–"वत्स ! वस्त्र और पात्र तो धर्म में सहायक होते हैं अतः वे धर्मोपकरण कहलाते हैं। और मूर्च्छा रहित धर्मोपकरण पास रखना जिनेश्वर भगवन्तों ने गलत नहीं कहा है। मोक्ष-प्राप्ति म विघ्न केवल लोभ करता है, वस्त्र पात्रादि नहीं। यदि रजोहरण और मुहपत्ति जीव रक्षा के लिए आवश्यक हैं तो भोजन करते हुए कोई जीवहत्या न हो, इस लिए पात्र भी आवश्यक हैं। फिर सरदी-गरमी-मच्छर आदि के उपद्रव से बचने के लिए वस्त्र-धारण करना अति आवश्यक है अन्यथा दुर्ध्यान होकर जीव सम्यक्त्वादि से स्खलित होकर अपनी दुर्गति करा ले तो कोई नई बात नहीं।"

इसप्रकार, वस्त्र-पात्रादि धर्म-जीवन के लिए उपयोगी है, जिन्हें रखना मुनि के लिए गलत नहीं है। बल्कि रत्नत्रयी आराधना में वे विशेष उपयोगी होते हैं। हाँ ... प्रथम संघयण वाले महासत्त्वशाली (महासत्त्वयुक्त)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुरुष वस्त्र-पात्रादि के बिना जिनकल्प व्रत स्वीकार कर सकते हैं। किन्तु वर्तमान में ऐसी संघयण-शक्ति न होने से हमारे लिए ऐसा जीवन सम्भव नहीं है। अर्थात् हमारे लिए वस्त्र-पात्रादि आवश्यक हैं।

इसप्रकार गुरु भगवन्त के बहुत समझाने के बाद भी स्वच्छन्दी शिवभूति मुनि ने अपना पूर्वग्रह न छोड़ा। और अन्त में वस्त्र एवं पात्र का त्याग करके, नग्न होकर अकेले ही वे नगर के बाहर स्थित उद्यान में चले गये।

मुनि शिवभूति का गृहस्थी के दौरान जैसा स्वच्छन्द जीवन था, निमित्त मिलते ही वैसी वृत्ति और प्रवृत्तियाँ यहाँ भी जागृत हो गई। शायद ऐसे ही किसी कारण से कृष्णाचार्य ने उनको दीक्षा देने से मना किया होगा। किन्तु भाग्य बलवान होता है जिससे सूरीदेव ने उसे साधु वेश प्रदान किये। चाहे कुछ भी हो–तब से शिवभूति ने अपना अलग मत आरम्भ कर दिया था और उनको एकाकी (अकेले) जानकर उनकी बहन–साध्वी भी उनके पास आ गई। वह भी निर्वस्त्र हो गई। जब वो दिगम्बर-साध्वी गाँव में भिक्षा के लिए गई तो उसकी नग्नावस्था देखकर नगर की एक वेश्या सोचने लगी कि हमारे अंग भी यदि वस्त्रों से आच्छादित हो तो ही हमारा गर्व है। अन्यथा स्त्री शरीर के अंग इतने बिभत्स होते हैं कि लोग घृणा किये बिना नहीं रह सकते। यदि यह साध्वी इसी प्रकार नगर में घूमती रही तो लोग हमारे पास आना बन्द हो जायेंगे। हमारा धन्धा खत्म हो जायेगा, यह सोचकर वेश्या ने दासीयों द्वारा बलपूर्वक उत्तरा साध्वी को वस्त्र पहना दिये।

फिर भी उत्तरा साध्वी वस्त्र धारण करना नहीं चाहती थी। अतः उसने शिवभूति के पास जाकर सारी बात बताई। शिवभूति बोले–स्त्रियों के लिए वस्त्र धारण करना गलत नहीं है। यह कहकर उन्होंने साध्वी को वस्त्र धारण करने की स्वतन्त्रता दी। इसप्रकार श्री वीर-शासन की अनेक नीतियों से प्रतिकूल रहने वाला दिगम्बर मत शिवभूति ने आरम्भ किया। उनके कोड़िन्न और कोहवीर नामक दो विद्वान शिष्य भी हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तव में प्राप्त सम्यग् धर्म भी अनादि (पुराने) कुसंस्कारों से जीव किस प्रकार खो देता है–यह उसका सचित्र दृष्टान्त है। कुछ लोगों के कुकर्म तो इतने अधिक खराब होते हैं कि वे अपने साथ अनेकों को विचलित करके धर्मभ्रष्ट कर देते हैं। जिसमें होने वाले वंश परंपरागत नुकसान तो जैन-जैनेत्तर समाज में आज भी स्पष्ट दृष्टिगोचर (होते) हैं।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. चाणक्य और चन्द्रगुप्त

व्यवहार में चाणक्य नीति प्रसिद्ध है। इस नीति के विधायक चाणक्य से बहुत लोग अवगत हैं तो कुछ अनजान भी है। इसी कारण जन्म से लेकर चाणक्य के जीवन को स्पर्श करता हुआ चित्रण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।–

गौड़ देश में चणक नामक एक गाँव था। चाणक्य के पिता का नाम चणक और माता का नाम चणेश्वरी था। जन्म के समय चाणक्य के मुँह में दाँत थे। उनके पिता जाति से ब्राह्मण थे और जैन धर्म को मानते थे।

एक दिन भिक्षा के लिए घर मे पधारे मुनिओं को उन्होंने दांत सहित जन्मे बालक विषय में बताया। मुनियों ने कहा–यह बालक भविष्य में राजा होगा।

पिता चणक पुत्र की केवल दैहिक देखभाल ही नहीं करते थे, वरन् वे वास्तविक अर्थ में धर्म-पिता थे। बालक सांसारिक सत्ता या सम्पत्ति से समृद्ध हो, ऐसी उनकी अभिलाषा न थी। क्योंकि सत्ता की साठमारी (भूख) से परलोक में होने वाली दुर्गति से वे भली प्रकार अवगत थे।

राजा बनकर कहीं मेरे पुत्र की दुर्गति न हो जाये–यह सोचकर आरी से उन्होने बालक के दाँत घिस दिये। मुनियों से फिर से बालक के विषय में पूछा गया। मुनियों ने कहा–"गुणालंकृत ये बालक अब राजा नहीं बनेगा किन्तु किसी राजा का शासन-प्रबन्ध देखेगा अर्थात् किसी राजा की छाया बनकर रहेगा।

पिता ने बालक का नाम चाणक्य रखा। दूज के चाँद के समान आयु में, विद्याओं में, कलाओं में एवं गुणों में वृद्धि प्राप्त करते हुए उसने यौवन में कदम रखा। एक कुलीन ब्राह्मण कन्या से उसका विवाह हुआ।

चाणक्य अपने जीवन से संतुष्ट था इसलिए निर्धन होने के बावजूद भी धन प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयत्न नहीं करता था।

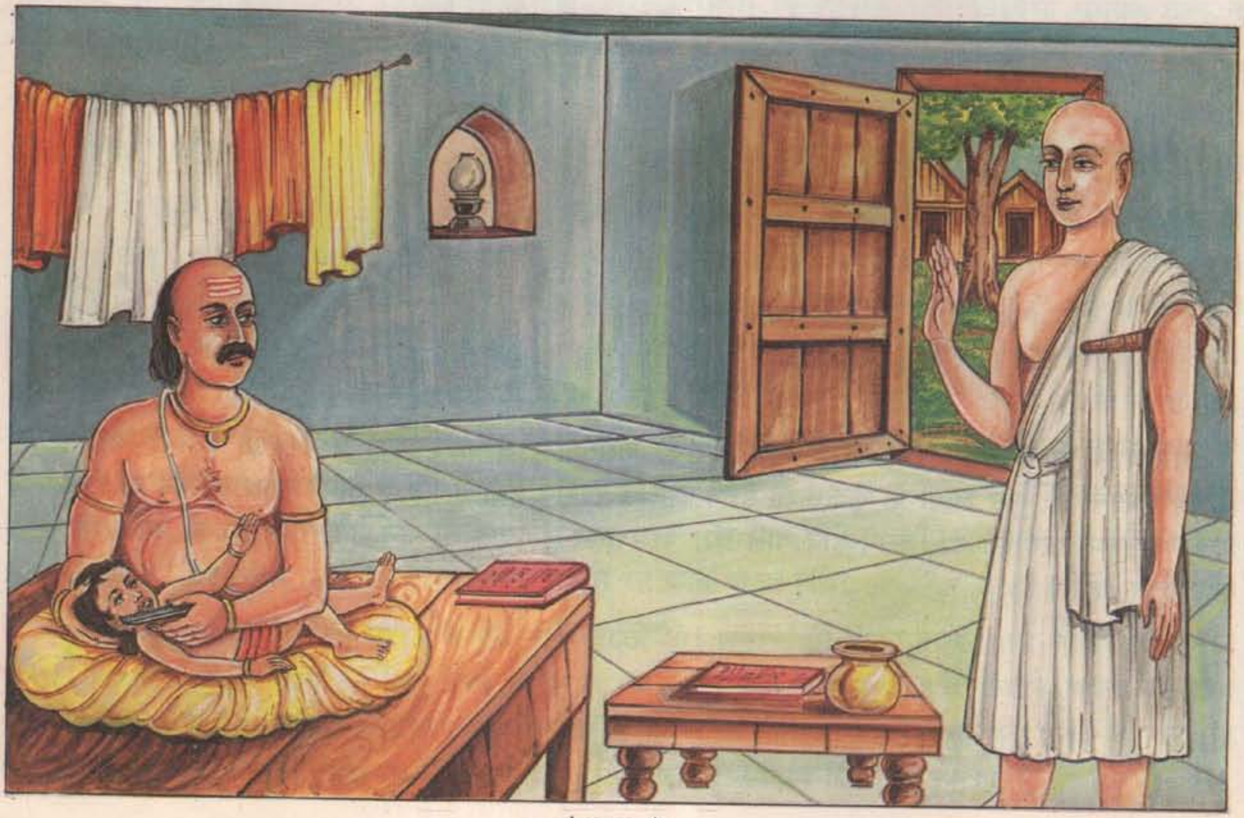

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार उसकी पत्नी अपने भाई के विवाह में मायके गई। किन्तु सादे वस्त्र और आभूषण रहित उसकी अवस्था देखकर किसी ने उसका अच्छी तरह स्वागत नहीं किया। उसकी अन्य बहनों का विवाह श्रीमन्त ब्राह्मणों से हुआ था, अतः उनका अच्छा स्वागत होता देखकर चाणक्य-पत्नी मन ही मन दुःखी हो गई। जैसे-तैसे विवाह निपटाकर वो उदासीन अवस्था में घर लौटी। उसके मुख पर उदासी देखकर चाणक्य ने उदासी का कारण पूछा। लेकिन वो कुछ बोली नहीं। उसकी आँखों से बूँद-बूँद आँसू टपकाती रही। चाणक्य के अति आग्रह के वश होकर उसने मायके में हुए अपने अनादर की बात खुलकर कही। तब चाणक्य सोचने लगा......

"वास्तव में निर्धनता मनुष्य के लिए जीवित मृत्यु के समान है।" मनुष्य कितना भी कलावान, दानवीर, यशस्वी या सुन्दर हो, पर यदि उसके पास धन नहीं है तो संसार की नजरों में वो क्षीण चन्द्र-सा कान्तिहीन है।

"सुना है कि राजा नन्द ब्राह्मणों को बहुत धन देते हैं। अतः वही जाना चाहिए।" यह सोचकर बुद्धिमान चाणक्य पाटलीपुत्र के राजा नन्द की सभा में जा पहुँचा। और अगली पंक्ति के अनधिकृत आसन पर जा बैठा।

चाणक्य को देखकर किसी सिद्ध पुरुष ने उच्च स्वर में कहा–"यह ब्राह्मण नन्द वंश से भी अधिक उन्नति करेगा।" अर्थात् नंद वंश को ओवरटेक करेगा।

चाणक्य को नन्द के सिंहासन पर बैठे देखकर राजा की एक दासी ने हाथ जोड़कर चाणक्य से नम्रतापूर्वक कहा– "भूदेव ! बगल के सिंहासन पर बैठो। यहाँ नहीं।"–तब चाणक्य ने उसकी बात को हँसकर टाल दिया। इतना ही नही उसने दूसरे सिंहासन पर अपना कमंडल रखा। तीसरे पर दण्ड (छड़ी), चौथे पर रुद्राक्षन की माला और पाँचवे पर ब्राह्मसूत्र (जनेऊ) रख दी और लापरवाही से नाटयात्मक मजाक करने लगा। ऐसी ढिठाई देखकर दासी ने चाणक्य को लात मारकर उठा दिया।

दासी से अपमानित होकर चाणक्य ने वही सबके सामने प्रण करते हुए कहा–"धन-भंडार और बंधु आदि से जिसकी जड़ें गहराई तक गई हैं, और पुत्रों व मित्रों से जिसकी शाखायें बहुत पसर चुकी हैं, ऐसे नन्द-वंश के

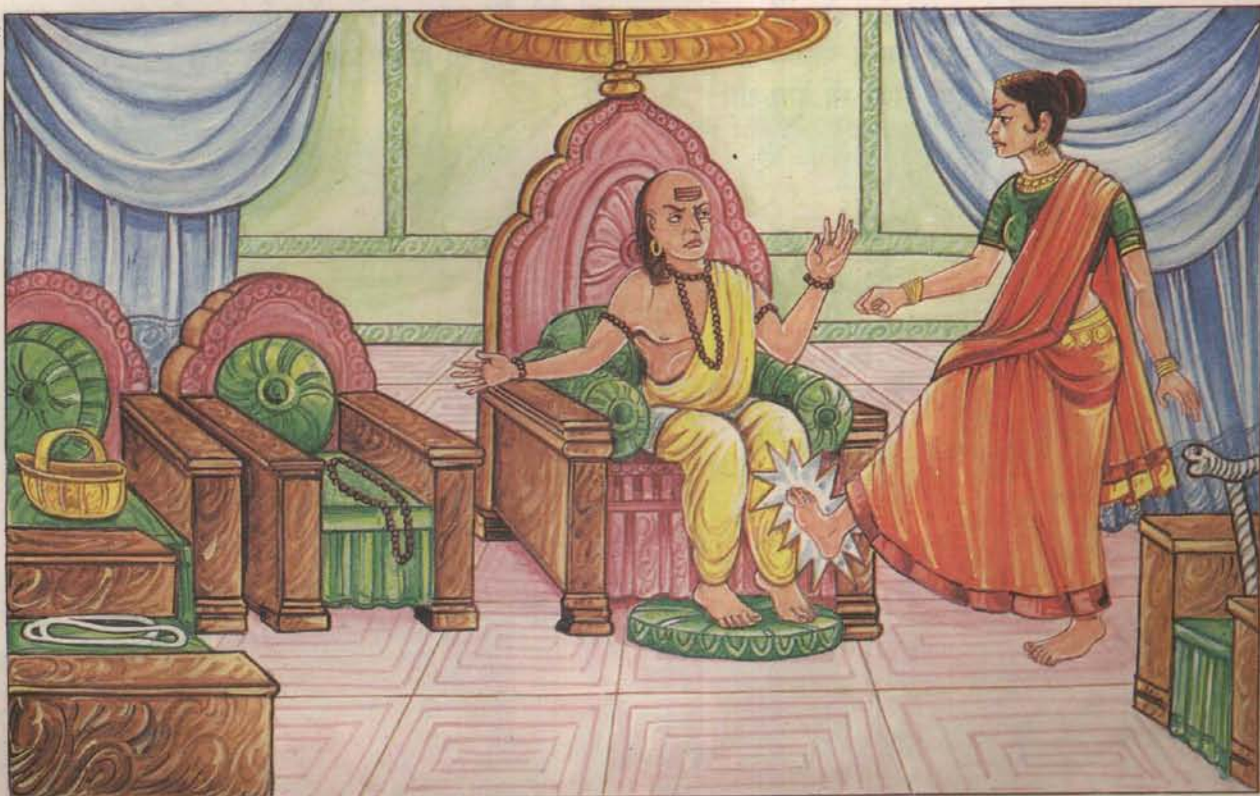

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृक्ष को मैं जड़ से उखाड़ दूंगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके राजा नन्द द्वारा उपेक्षित चाणक्य नगर से बाहर चला गया।

''यह बालक किसी राजा की छाया होकर रहेगा।'' पिता के इन वचनों को याद करते हुए चाणक्य अपने भावी राजा की खोज में भटकता हुआ (नन्द राजा के) मयूरपोषक नामक गाँव में सन्यासी के वेष में भिक्षा के लिए भटकने लगा।

उस गाँव में किसी ब्राह्मण की गर्भवती पुत्री ने चन्द्र-पान करने का प्रण (दोहद) था। जो कि किसी भी प्रकार पूरा न होने पर उसका शरीर क्षीण होता जा रहा था, उसी समय चाणक्य सन्यासी के वेष में वहाँ जा पहुँचा। उसके पिता एवं भाई ने चाणक्य से पूछा–''यह (दोहद) प्रण किस प्रकार पूरा होगा ?''

चाणक्य ने कहा–''आपकी पुत्री की प्रसूति के बाद जो भी बच्चा जन्म ले, वो मुझे देने का वचन दो तो मैं तुरन्त उसका (दोहद) प्रण पूरा करवा दूँ।''

''प्रण पूरा नहीं होगा तो शायद पुत्री की मृत्यु हो जाय।''–अतः सन्यासी की बात स्वीकार करनी चाहिए, इस प्रकार परस्पर सोच-विचारकर सन्यासी (चाणक्य) की बात स्वीकार कर उन्होंने उससे प्रण पूरा करवाने के लिए विनंती की।

चाणक्य ने कपड़े का एक मंडप तैयार करवाया और उसकी छत पर एक सुराख करवा दिया। गुप्त रूप से उस सुराख को ढकने के लिए एक व्यक्ति को ऊपर बिठा दिया। सुराख के ठीक नीचे (मंडल में) पानी से भरा हुआ एक थाल रखा गया। कार्तिक पुर्णिमा की रात चन्द्र का प्रतिबिम्ब थाल में दिखने लगा। गर्भवती पुत्री को वो पानी पीने के लिए कहा गया। ज्यों-ज्यों वे प्रतिबिम्बित थाल का पानी पीती जाती है, त्यों-त्यों ऊपर स्थित व्यक्ति सुराख को ढकता जाता है। पुत्री ने सोचा कि–मैं चन्द्र पान कर रही हूँ। इसप्रकार उसका प्रण पूरा हुआ। कुछ समय बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया। पिता आदि ने उसका नाम 'चन्द्रगुप्त' रखा।

''पूत के लक्षण पालने में'' इस उक्ति अनुसार औदार्य, धैर्य, गांभीर्य एवं सौन्दर्य आदि गुणों से अलंकृत वह बालक (चन्द्रगुप्त) बच्चों के साथ खेल-खेल में राजा बनता था। जैसे कि राजा बनने की भविष्यवाणी का पूर्व संकेत कर रहा हो। स्वयं राजा बनकर किसी बालक को पुरस्कार में गाँव देता–तो किसी बालक को घोड़ा बनाकर उस पर सवारी करता। किसी बालक को सजा भी देता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाणक्य भी घूमता-घूमता बालक (चन्द्रगुप्त) को देखने उसी गाँव में, उसी स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ बालकों के साथ चन्द्रगुप्त खेल रहा था। इस बार चन्द्रगुप्त स्वयं राजा बनकर बच्चों को कुछ दे रहा था। चाणक्य ने भी उस बाल-राजा से याचना करते हुए कहा–"महाराज जी ! मुझे भी कुछ दीजिये।" यह सुनकर चन्द्रगुप्त ने कहा–"भूदेव ! आपको गाय भेंट करता हूँ।" चाणक्य ने कहा गायों से तो मैं डरता हूँ। चन्द्रगुप्त ने कहा–"यह पृथ्वी तो वीरभोग्या है, (वीरभोग्या भूरियम्)।" तब चाणक्य ने अन्य बालकों से पूछा–"ये बालक कौन है ?" बालकों ने उत्तर दिया कि जब ये वालक गर्भावस्था में था, तब उसकी माता का प्रण पूरा करवाने के उपलक्ष्य में किसी सन्यासी को दिया गया था। यह प्रकृष्ट बुद्धिमान बालक मेरा अपना ही हैं, यह सोचकर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त से कहा–"वत्स ! चलो, मैं तुम्हें राज्य दिलाऊँगा। मैं वही सन्यासी हूँ जिसको तुम दिये गये थे।"

राज्येच्छु बालक चन्द्रगुप्त भी उसके साथ जाने के लिए तैयार हो गया। चाणक्य ने उसको साथ लेकर जल्दी से नगर छोड़ दिया। तत्पश्चात् कुछ धन एकत्रित करके उन्होंने एक छोटी-सी सेना तैयार की। और अपना प्रण पूरा करने के लिये पाटलीपुत्र को चारों ओर से घेर लिया। परन्तु नन्द की विशाल सेना के समक्ष वे टिक न सके। पराजित होकर भाग निकले। चन्द्रगुप्त को पकड़ने के लिए नन्द के सैनिकों ने उसका पीछा किया। उन सैनिकों में से एक सैनिक तीव्र गति से दौड़ते हुए उन दोनों के बहुत निकट आ पहुँचा। सैनिक को देख चाणक्य ने बाल चन्द्रगुप्त को निकट स्थित एक तालाब में छिपा दिया और स्वयं धोबी बनकर कपड़े धोने का ढोंग करने लगा।

निकट आकर सैनिक ने चाणक्य से पूछा–"अरे धोबी ! यहाँ से भागते हुए चन्द्रगुप्त को तुमने देखा है क्या ?" चाणक्य ने कहा–"हाँ ... इस तालाब में प्रवेश कर वो छिप गया है।"

वस्त्र, शस्त्र, बखतर आदि उतारकर केवल एक लंगोटी पहने हुए सैनिक ने जैसे ही चन्द्रगुप्त को ढूँढने के लिए तालाब में छलांग लगाई, तभी उसी की तलवार से चाणक्य ने उसका सिर उड़ा दिया। तत्पश्चात् बाल चन्द्रगुप्त को बुलाकर दोनों घोड़े पर सवार होकर आगे रवाना हुए। रास्ते में चाणक्य ने चन्द्रगुप्त से पूछा–कि तुम्हारे विषय में मेरे

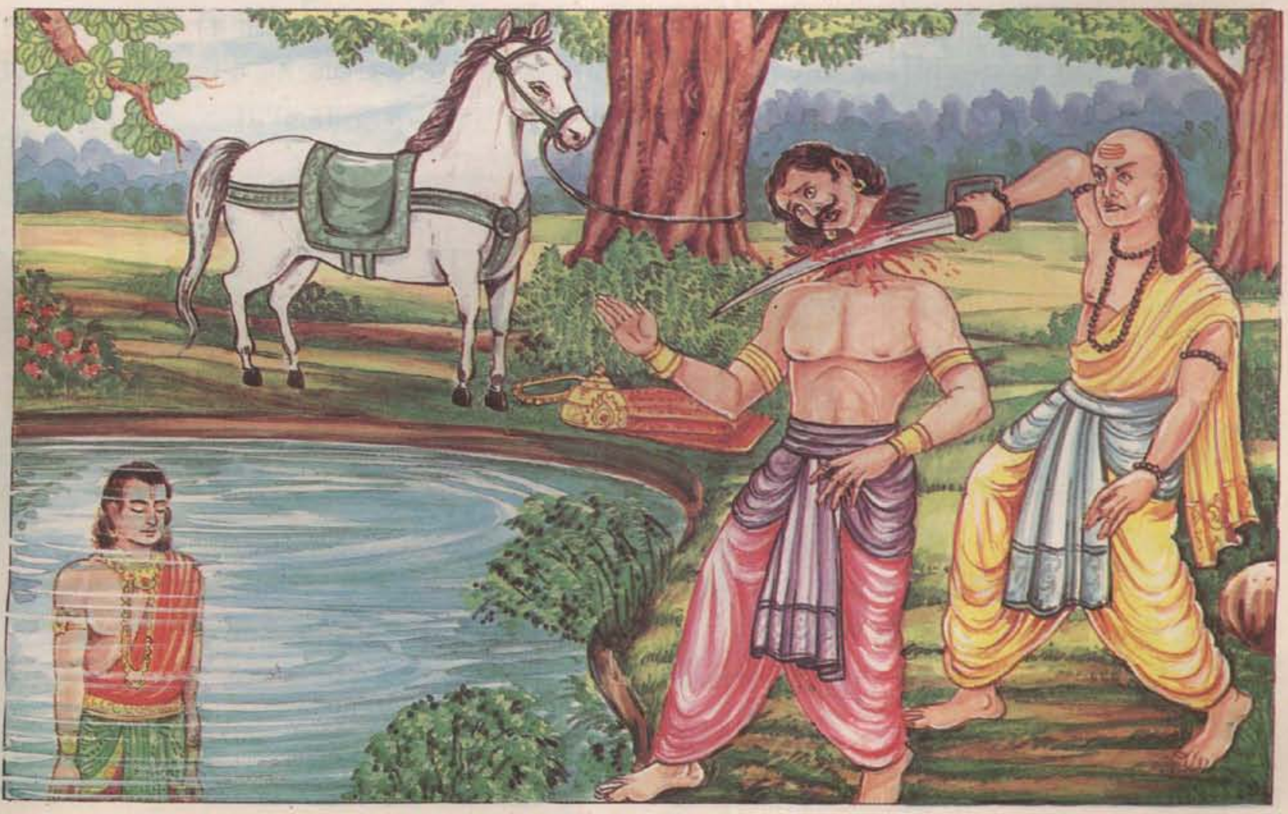

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और सैनिक के बीच जो वार्तालाप हो रहा था, तब तुम क्या सोच रहे थे ? चन्द्रगुप्त ने कहा–"पूज्यवर ! तब मैं यही सोच रहा था कि आप जो भी करेंगे, अच्छा ही करेंगे। इस विषय में मुझे कुछ सोचना ही नहीं चाहिए।" यह सुनकर चाणक्य सन्तुष्ट हुआ और सोचने लगा कि भविष्य में चन्द्रगुप्त हमेशा मेरे वश में रहेगा।

कुछ दूर तक यात्रा करने के बाद चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से कहा–मुझे बहुत भूख लगी है। चन्द्रगुप्त को वहा बिठाकर चाणक्य पास के गाँव में भोजन लेने गया। तभी दूर से उसने एक व्यक्ति को आते हुए देखा। चाणक्य न उससे पूछा–"इस गाँव में भिक्षा मिलेगी ?" व्यक्ति ने कहा–हाँ, मैं भी अभी दही और भात आदि का भोजन करके आ रहा हूँ।"

चाणक्य ने सोचा–गाँव में यदि मैं भिक्षा लेने जाऊँगा तो नन्द के क्रूर सैनिक चन्द्रगुप्त को मार देंगे और भविष्य में राज्य प्राप्त करने का मेरा स्वप्न अधूरा रह जायेगा। अतः इस स्थिति से निपटना अत्यन्त आवश्यक है। यह सोचकर उसने उस व्यक्ति के पेट में छुरा भोंक दिया और उसकी आंतों में से ताजा खाया हुआ दहीभात का भोजन निकालकर चन्द्रगुप्त को खिलाया और स्वयं भी खाया। सत्य ही है कि नीच लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरों से विश्वासघात करने से बाज नहीं आते।

चाणक्य को तो असहाय होकर कुछ बुरे काम करने पड़े होगें। जबकि आधुनिक चाणक्यों की ती बात ही निराली है। अरबो की सम्पत्ति स्वीट्जरलेन्ड के बेंकों में जमा करने के बाद भी अपनी सत्ता का दुरुपयोग करके देश को खोखला बनाकर हंसते हुए मूल्यों की बात करने में तनिक भी लज्जित नहीं होते।"

राजनीतिकों ने अपने स्वयं की पूर्ति के लिए देश को पतन के गर्त में धकेल दिया है। जनता को बिल्कुल खोखला कर दिया है। कथित लोकतन्त्र में लोगों का सूर ही नहीं है। और यदि कोई आवाज उठाये तो नक्कार खाने की तूती के समान होती है। वास्तव में आजकल लोकतन्त्र का अर्थ ही अफसरतन्त्र, गुंडातन्त्र, पहुँचतन्त्र, अंधेरतन्त्र आदि है। राज्यतन्त्र में महाजन की आवाज में वजन होता था। महाजन अर्थात् लोगों की आवाज, जनता की आवाज, महाजन जनता की समस्याओं को सत्ताधीश तक पहुँचकर उनका समुचित हल भी करता था। जब महाजन युक्त राज्यतन्त्र का निर्माण होगा तभी सफेद पोश ठगों का अन्त होगा और तभी भारत की संस्कृति में सुधार होगा।

★★

जगत के औल प्रोबलेम्स सोल्व करने की ताकत मैत्री व करुणा (भावना) में है। *–प. पू. आ. वि. कलापूर्ण सू. म.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. बदलती राजनीति

घूमते-घूमते चन्द्रगुप्त और चाणक्य हिमाचल प्रदेश पहुँचे। वहाँ के राजा 'पर्वत' के साथ चाणक्य ने गहरी मित्रता कर ली, और अवसर देखकर चाणक्य ने उससे कहा–"तुम्हारा विशाल सैन्य एवँ मेरी बुद्धि–इन दोनों द्वारा हम राजा नन्द के साम्राज्य को जड़ से उखाड़कर उसके राज्य को आपस में बाँट लेंगे। राजा पर्वत ने भी उसकी बात स्वीकार कर ली और उन्होंने पाटलीपुत्र को चारों ओर से घेर लिया।

पर केवल सैन्य-बल से नन्द का एक भी नगर नहीं जीता जा सकता था। अतः चाणक्य ने संन्यासी के वेष में नगर में प्रवेश किया। नगर में मकानों का निरीक्षण करते-करते उसने एक स्थान पर देवताओं की सात मूर्तियाँ देखीं। चाणक्य ने सोचा–"नगर को अखण्ड रखने की शक्ति इन्हीं मूर्तियों में है। अतः इनको जड़ से उखाड़ देना चाहिए।" ठीक उसी समय नगरजनों ने चाणक्य से पूछा–"शत्रु राजा ने चारों तरफ घेरा डाल रखा है। हम लोग बहुत दुःखी हैं। भगवन् ! इस दुःख से मुक्ति कब मिलेगी? नगर के द्वार कब तक खुल सकेंगे?" मौका देखकर चाणक्य ने कहा–"जब तक इस नगर में सात देवताओं की मूर्तियाँ विद्यमान हैं, तब तक दुःख मुक्ति एवं शत्रु राजा से मुक्ति से असंभव है।

यह सुनकर नगरजनों ने वहाँ स्थित सातों प्रतिमाओं को जड़ से उखाड़ दिया। और इधर चाणक्य के संकेतानुसार चन्द्रगुप्त और राजा पर्वत भी सेना का घेरा दूर करते गये। यह देखकर नगरजनों को चाणक्य पर अत्यधिक विश्वास हो गया। वे असावधान हो गये।

अब चाणक्य ने फिर से नगर चारों ओर तंग घेरा डाला और तीनों ही विशाल सेना लेकर नगर पर टूट पड़े। शीघ्र ही उन्होंने नगर पर कब्जा कर लिया। पुण्य, बुद्धि एवं बल से क्षीण नन्द राजा चाणक्य की शरण में आ गया तब चाणक्य ने नन्द से कहा–"एक ही रथ में तुम जो कुछ चाहो, लेकर नगर के बाहर से जा सकते हो।"

नन्द ने एक रथ में स्वयं, पत्नी, पुत्री और कुछ मूल्यवान धन-जेबरात लेकर नगर के बाहर प्रस्थान किया।

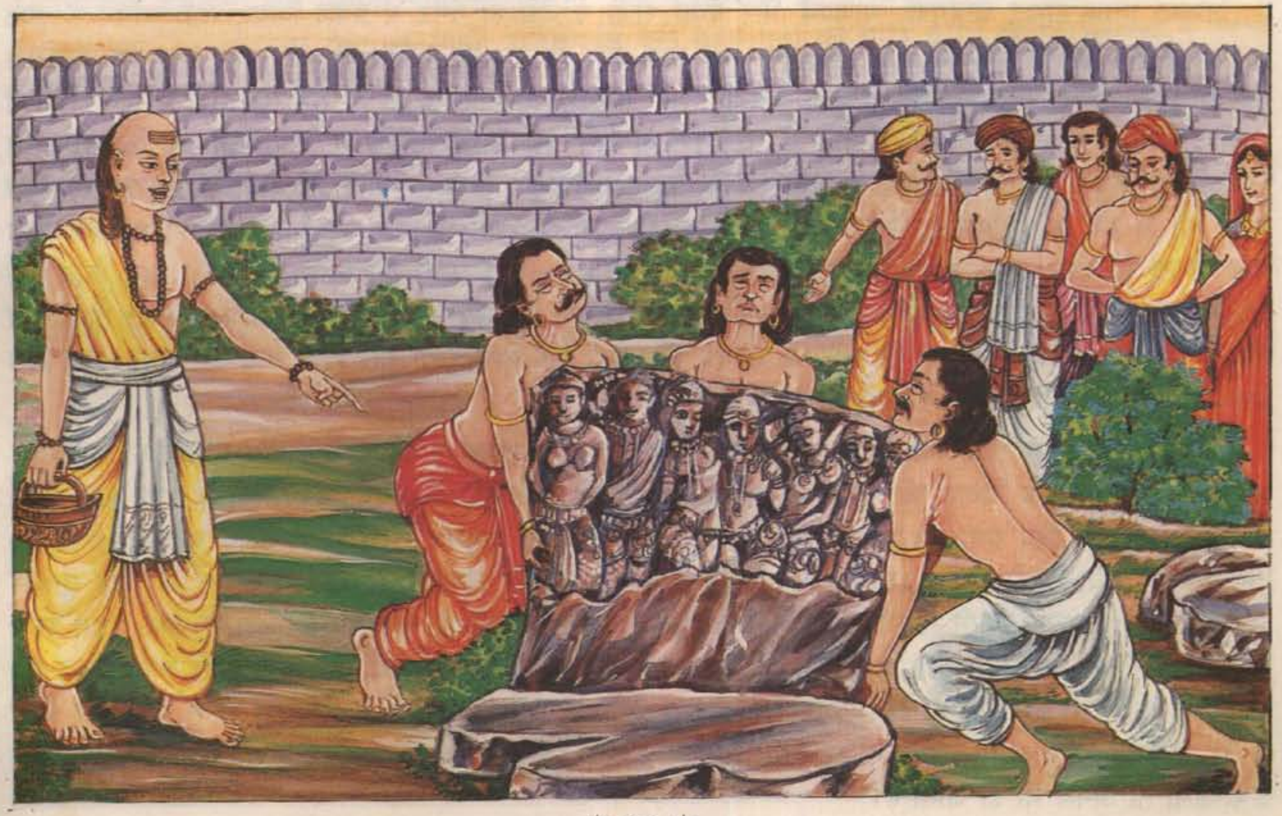

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

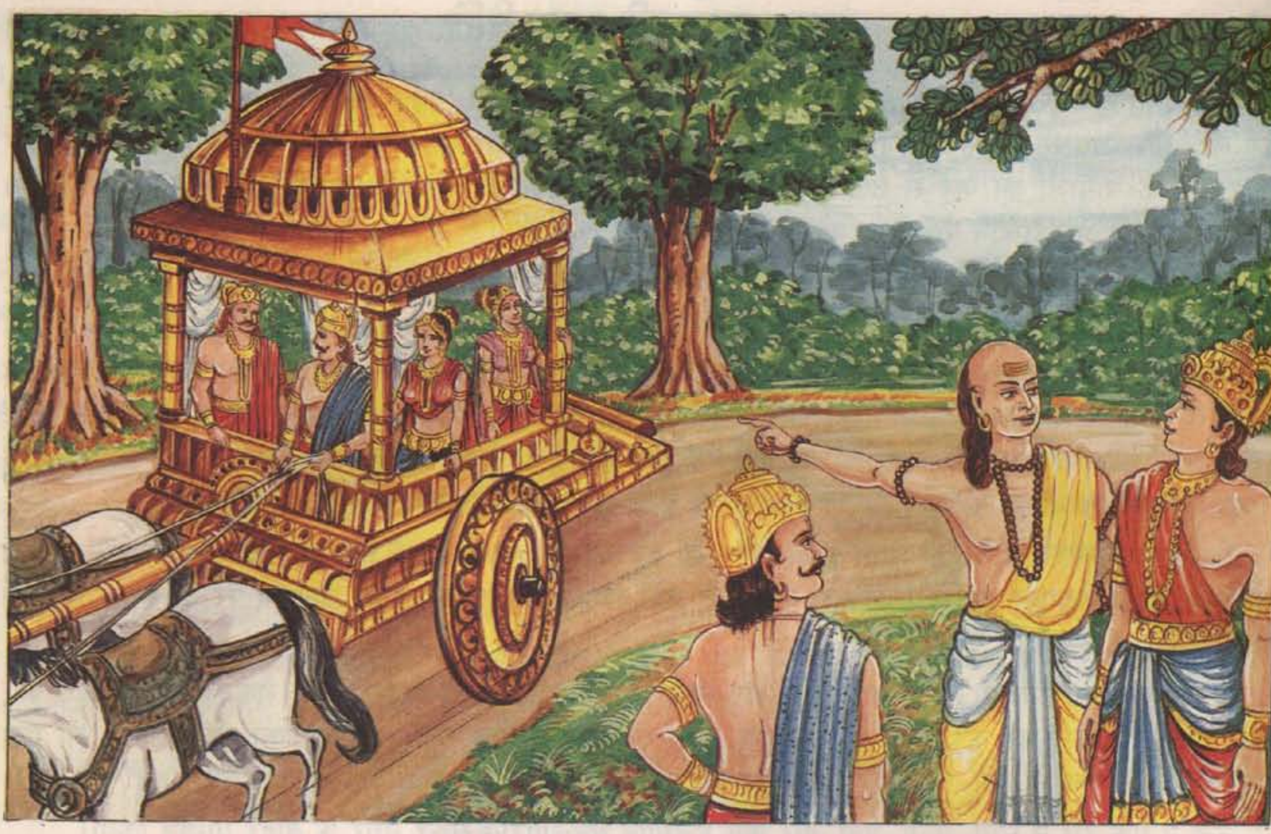

अत्यन्त प्रसन्न होकर चन्द्रगुप्त, चाणक्य और पर्वत राजा ने जैसे ही नगर में प्रवेश किया, तभी सामने से आते हुए रथ में से नन्द की पुत्री की नजर चन्द्रगुप्त पर पड़ी और वो उस पर मोहित हो गई। चतुर नन्द की नजरों से यह बात छिप न सकी। उसने पुत्री से कहा–"बेटी ! यदि तुम्हें चन्द्रगुप्त पसन्द हो तो तुम तुरन्त ही उसकी शरण में जाओ। सचमुच, राजपुत्रियाँ स्वयंवरा होती हैं। चन्द्रगुप्त के पास चली जाओ, ताकि तुम्हारे विवाह की चिन्ता मुझे न रहे।" पिता नन्द से अनुमति प्राप्त कर कन्या रथ से उतरकर चन्द्रगुप्त के पास पहुँची और ज्यों ही वो रथ पर चढ़ने लगी, त्यों ही रथ के नौ आरे टूट गये। "यह कन्या अमंगलकारी है।" यह सोचकर चन्द्रगुप्त उसको स्वीकार करने से मना करता है। परन्तु चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को समझाते हुए कहा–"इस कन्या का निषेध मत करो। इस निमित्त से ऋद्धि-सम्पन्न नौ पीढ़ियों तक तुम्हारा वंश अखण्ड रहेगा" चन्द्रगुप्त ने कन्या को रथ पर बिठा लिया और तीनों लोग नन्द की सम्पत्ति प्राप्त करने नन्द के महल के अन्दर घुसे। वहाँ एक विष-कन्या थी। राजा नन्द उसे जन्म से ही विष देता था। सो उसके पूरे शरीर में विष-व्याप्त था।

इस बात से अज्ञात राजा पर्वत विष-कन्या पर मोहित हो गये। चाणक्य ने उसका अभिप्राय समझकर विषकन्या के साथ राजा पर्वत के विवाह की तैयारी करवा दी। पाणिग्रहण (संस्कार) के समय विष कन्या के हाथ द्वारा पर्वत राजा के शरीर में विष प्रवेश कर गया और वे अत्यधिक पीड़ा का अनुभव करने लगा। उसने चन्द्रगुप्त से कहा– "मित्र ! मुझे बचाओ। मेरा कोई इलाज करो। मैं बेहोश हो रहा हूँ। मेरे अंग-अंग में जहर फैल रहा है।" यह सुनकर दयालु चन्द्रगुप्त ज्यों ही किसी गारुड़ी-वैद्य बुलाने का प्रयत्न करता है, त्यों ही चाणक्य ने संकेत से कहा–"इस राजा को तो बाद में भी मारना ही था। अब वह स्वयं मर रहा है तो उसकी चिकित्सा क्यों की जाये? यदि वह जीवित रहा तो आधा राज्य इसे देना पड़ेगा। अतः शान्त रहो।" इस प्रकार चाणक्य के संकेत से चन्द्रगुप्त शान्त रहा और थोड़ी ही देर में पर्वत राजा तड़प-तड़प कर मर गया। वास्तव में बिना भाग्य के किया गया प्रयत्न सफल नहीं होता, बल्कि कभी-कभी तो अनर्थ भी हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

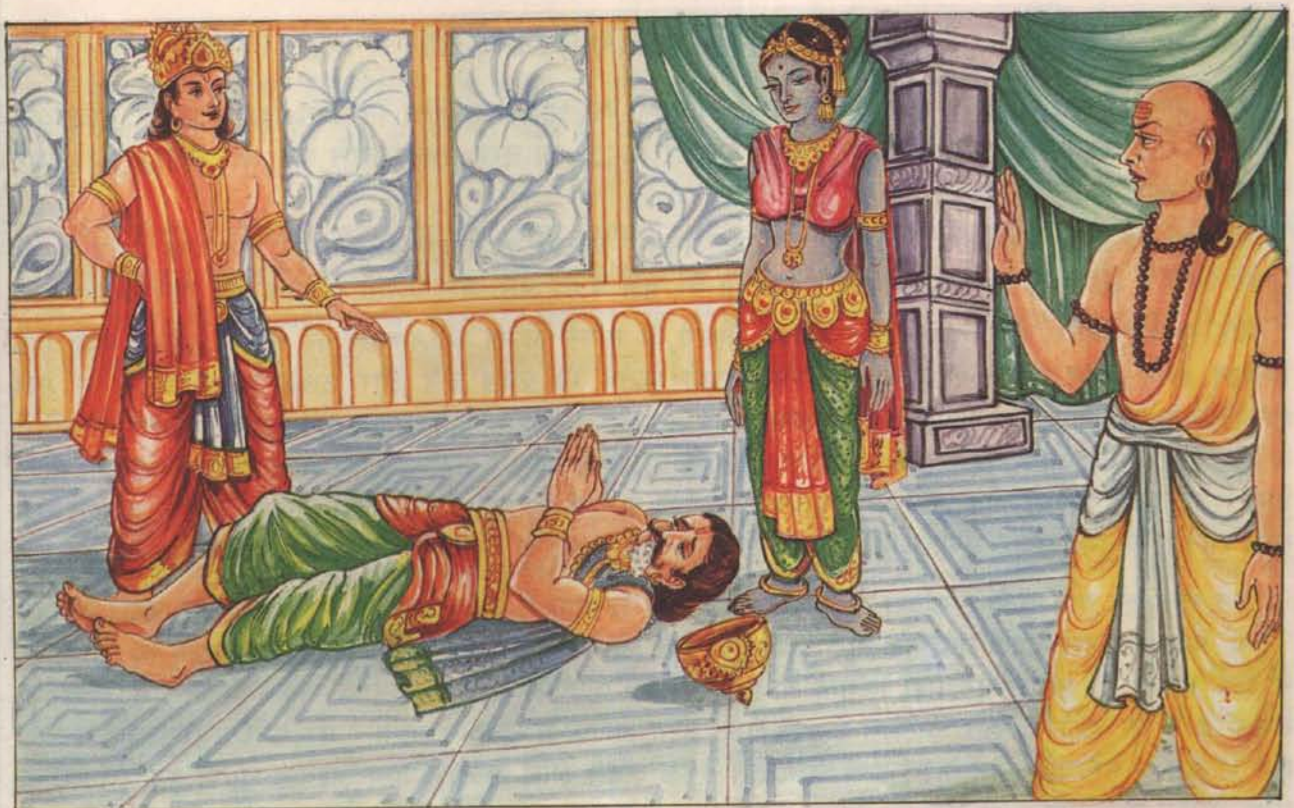

राजनीति का गन्दा खेल कितना भयानक होता है? नन्द के साम्राज्य को प्राप्त करने में जिसकी विशाल सेना की सहायता प्राप्त की गई, उस सेना का स्वामी राजा पर्वत बुरी तरह मृत्यु को प्राप्त हुआ। तो भी चाणक्य ने उसकी उपेक्षा की और उसे मर जाने दिया।

सत्ता की भूख अच्छे-अच्छे बुद्धिमानों की बुद्धि भ्रष्ट कर उन्हें कृतघ्न बना देती है।

राजा पर्वत के सन्तान न होने के कारण नन्द का सम्पूर्ण साम्राज्य चन्द्रगुप्त को प्राप्त हुआ। सारे पाटलीपुत्र में चन्द्रगुप्त का शासन चलने लगा।

इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य अखण्ड एवं निष्कंटक बना। अब केवल राज्य के भण्डारों को समृद्ध बनाने का काम शेष था। देखें...... अगले चेप्टर में।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. समृद्ध प्राचीन भारत

एक बार चाणक्य ने राज्य के प्रथम श्रेणी के धनवानों को भोजन के लिए निमंत्रित किया। भरपूर मदिरायुक्त भोजन से सारे धनवान शीघ्र ही अपनी आन-बान भूलकर पागलों की तरह प्रलाप करने लगे और नशे में इधर-उधर लड़खड़ाने लगे।

चाणक्य भी उनमें शामिल हो गया। और उनके अनुसार चेष्टायें करते हुए बोला–"मेरे पास एक त्रिदंड है, दो सुन्दर धोती हैं और एक स्वर्ण-कमण्डल है। राजा भी मेरे वश में है। अतः मेरी प्रशंसा के गीत गाये जाने चाहिए।"

यह सुनकर मदिरा से अत्यन्त उन्मत्त होकर, किसी के सामने अपनी धन-सम्पत्ति का भेद न खोलने वाला एक धनवान बोला–"दस योजन तक कोई मदोन्मत्त हाथी जितने भी कदम चले और उसके प्रत्येक कदम पर एक लाख सौनेया रखे जायें, उतने सौनेया मेरी सम्पत्ति है। अतः मेरी प्रशंसा के गीत गाये जाने चाहिए।" इतने में–मदिरा से मदान्ध हुए एक अन्य धनवान ने अपनी सम्पत्ति का बयान करते हुए कहा–"यदि आढक (एक प्रकार का माप) तिल जिस किसी खेत में बोये जायें और प्रत्येक फले-फूले पौधे में जितने तिल हों, उस प्रत्येक तिल के बराबर एक लाख सौनेया जितनी अपार सम्पत्ति मेरे पास है। इसलिए मेरी प्रशंसा के गीत गाये जाये सो आश्चर्य क्या है?"

उन दोनों की बात सुनकर मदिरा से उन्मत्त एक तीसरे धनवान ने अपनी सम्पत्ति का बखान इस प्रकार किया–"सुनो, पर्वत पर होने वाली वर्षा की भारी प्रवाहयुक्त बाढ़ को मेरे यहाँ एक ही दिन में निकले मक्खन की दीवार से मैं रोक सकता हूँ। सोचों, मेरे यहाँ कितना गोधन होगा कि बाढ़ को एक ही दिन में निकले मक्खन से रोका जा सकता है।" इस प्रकार बोलते हुए जैसे ही वो शान्त हुआ कि चौथा धनवान बोला–"मेरे पास प्रचुर अश्व धन है। एक ही दिन में मेरे यहाँ इतने अश्व बच्चे जन्म लेते हैं कि केवल आज के ताजे जन्मे अश्व-बच्चों के केश (बालों) के समूह से पूरा पाटलीपुत्र नगर घेरा जा सकता है। इसलिए मेरी प्रशंसा के गीत गाये जायें यही उचित है।"

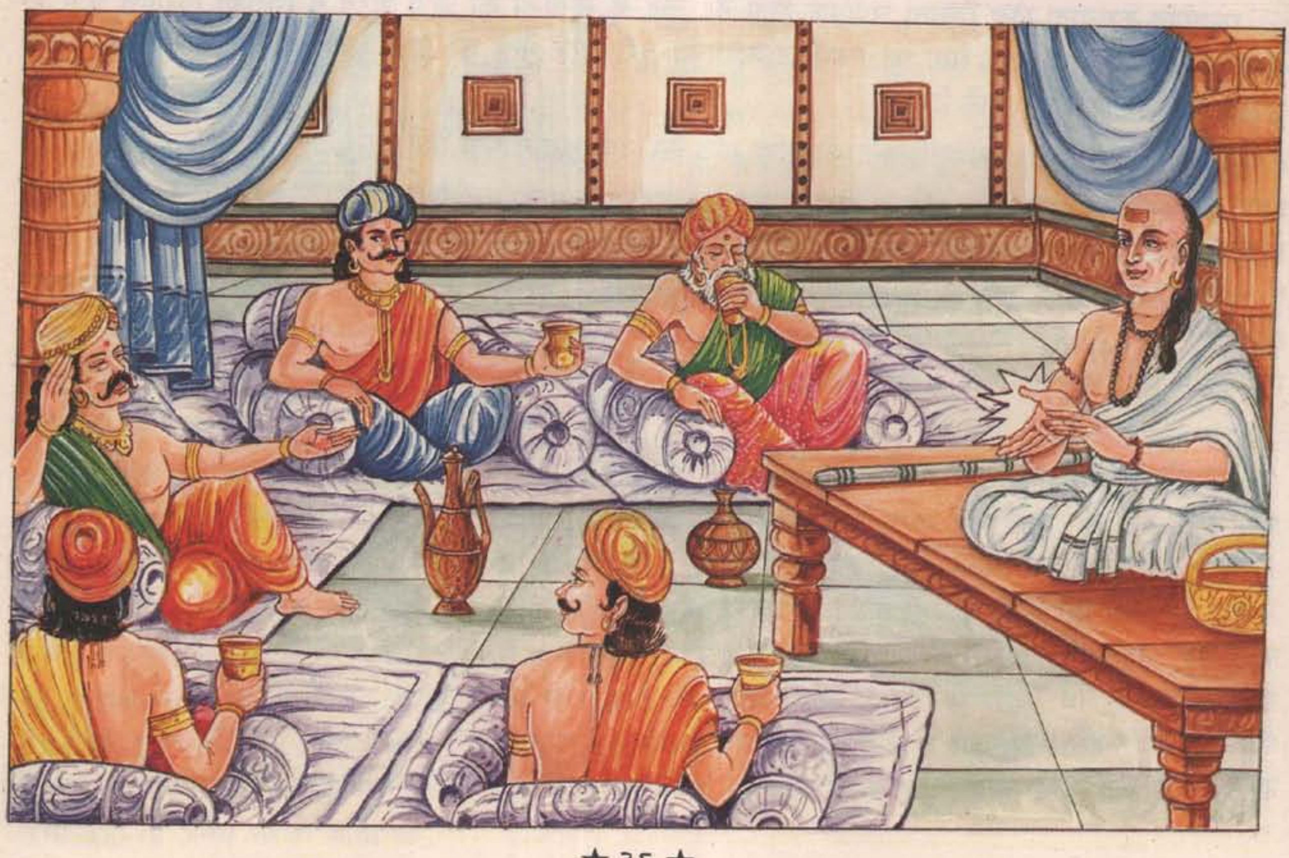

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"यह धन तो मेरी समृद्धि के समक्ष तुच्छ है।" इस प्रकार आक्षेपपूर्वक पाँचवां धनवान बोला–"मेरे पास प्रसूतिका एवं गर्दभिका दो विद्या रत्न ऐसे हैं कि चावल के पौधे को चाहे कितनी बार काटा जाये तो भी तुरन्त वैसा ही फला-फूला खिल जाता है। ऐसा प्रभाव मेरे पास के दो रत्नों में है। अतः मेरा अधिकार है कि मेरी प्रशंसा के गीत गाय जायें।"

तभी निद्रा से चौंककर जागते हुए एक अन्य धनवान उच्च स्वर में बोला–"मेरी सम्पत्ति के समक्ष तुम लोगों की सम्पत्ति बिल्कुल तुच्छ है। प्रशंसा गीत का वास्तविक अधिकारी तो मैं हूँ। सुनो, मुझे धन प्राप्ति के कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। न कहीं यात्रा करनी पड़ती है। मुझ पर एक भी पैसे का कर्ज नहीं है। मेरी पत्नी मेरे वश में है। और मैं हमेशा पूरे शरीर पर चन्दन का लेप लगाकर निकलता हूँ। मैं कितना सुखी-सम्पन्न हूँ ?"

इस प्रकार एक के बाद एक धनवान मदिरा के नशे में अपनी व्यक्तिगत पूँजी का प्रदर्शन करते गये। और जब उनका नशा उतरा और वे स्वस्थ हुए तो चाणक्य ने सीमा में रहकर उनसे इस प्रकार यथोचित धन ग्रहण किया।

पहले धनवान से एक योजन तक पड़ने वाले हाथी के कदमों के हिसाब से प्रति कदम एक लाख सौनेया ग्रहण की। (उस धनवान के पास दस योजन तक चलने वाले हाथी के एक-एक कदम के अनुपात में प्रति कदम एक लाख सौनेया थीं।)

एक तिल के पौधे में जितने तिल पैदा हों, उस प्रति तिल के हिसाब से एक-एक लाख सौनेया दूसरे धनवान से ग्रहण की। तीसरे धनवान से प्रतिमाह एक दिन में जितना मक्खन निकलता हो, उतना मक्खन ग्रहण करना तय किया गया। चौथे धनवान से एक दिन में पैदा होने वाले अश्व बच्चे राज्य को देना तय किया गया।

पाँचवें से राज्य के अन्न भण्डारों को भरपूर करने के बराबर चावल ग्रहण करना तय किया गया। इस प्रकाार प्रथम श्रेणी के धनवानों से धन ग्रहण करने के बाद चाणक्य ने राज्य की अन्य सुखी-सम्पन्न आम जनता से धन ग्रहण करने की नई तरकीब अपनायी।

सौनेया से भरा एक थाल बाजार के चौराहें के बीच रखा गया। फिर चाणक्य ने एलान किया कि चौपड़ में जो मुझसे जीतेगा उसे स्वर्ण मोहरों से भरा यह थाल भेंट दिया जायेगा और यदि मैं जीत जाँऊ तो हारने वाले को एक सौनेया मुझे देनी होगी। (कहा जाता है कि चौपड़ खेलने के पासे यांत्रिक या देविय थे, जिससे चाणक्य ही जीतता था।)

इस प्रकार चाणक्य ने आजकल की शोषण पद्धति के बिना ही राज्य के अर्थ-तन्त्र को मजबूत बना दिया। लेकिन हाँ...... उसके स्थान पर यदि आज के सेल्सटैक्स या इनकमटैक्स अफसरों ने उन धनवानों के यहाँ छापा मारा होता...... उन बेचारों को भटकते फकीर बना दिया होता।

भारत कितना समृद्ध और बुद्धिमान देश था ! जहाँ का प्रत्येक धनवान इस धरती पर घी-दूध की नदियाँ बहाने में समर्थ था। जहाँ का एक ही चााणक्य अपनी तीव्र बुद्धि द्वारा देश की समृद्धि एवं निर्भयता के लिए काफी था।

भूतकाल का वो चाणक्य यदि आज जीवित होता तो कदाचित् विदेशी गोरों के रहस्यमय पंजों को भारत में प्रवेश न करने देता।

ऐसा एक भी चाणक्य आज की राजनीति में दृष्टिगोचर नहीं है जो यन्त्रीकरण के स्थान पर गो-धन, अश्व-धन, गज-धन एवं शक्ति-धन से हमारी संस्कृति को पुनः जीवित कर सके।

जो प्राणियों के रक्त से तर इस धरती को शुद्ध दही-दूध से तर कर दे, बूचड़खानों को नष्ट कर दे एवं देश के धन को मछली मारने, मुर्गी मारने, माँस उत्पादन जैसे महापापी धन्धों के लिए खर्च न करे और जिस शासक या अधिकारी ने जनता के धन का ऐसा दुरुपयोग किया हो, उसे कड़ी सजा दे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- रासायनिक खाद और एलोपेथी दवाईयों को त्यागकर देशी खाद एवं आयुर्वेद को अपनाये।
- मिस्त्री, बढ़ई, लुहार, तेली, मोची कुम्हार, बनकर, चमार आदि का वंश परम्परागत धन्धा, अनुभव ज्ञान आदि से ग्राम्य हस्तउद्योग, कला एवं स्थापत्य को पुनः स्थापित करे।
- नौकरीपरक, रोटीपरक और डिग्री परक पाश्चात्य भौतिक शिक्षा को समाप्त कर गुरुकुल प्रथा को पुनः स्थापित करे।
- अंग्रेजों द्वारा स्थापित न्याय-तन्त्र (या अन्याय तन्त्र) को समाप्त कर आदर्श न्याय-तन्त्र को स्थापित करें। महाजन व्यवस्था का योग्य स्वागत करे।
- जनता और बच्चों के मानस पर कुत्सित संस्कार डालने वाले भौंडे चलचित्रों, दृश्यों, पत्रिकाओं, विज्ञापनों और समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध लगाये।
- मातृ-भाषा एवं संस्कृत भाषा को प्रोत्साहन दें।
- अंग्रेजों की कूटनीति से स्थापित विभिन्न पार्टियों, कृत्रिम अधार्मिक संविधान, पाश्चात्य हिंसक और शोषक अर्थ व्यवस्था का त्याग करे।
- वैर-ईर्ष्या, षड्यन्त्रों, मतभेद, झूठ, प्रपंच, भ्रष्टाचार, बेईमानी, ठगी, अरबों रुपयों की बरबादी, नीच-दुष्ट तत्त्वों को जन्म देने वाली चुनाव-प्रथा को समाप्त करे।
- विदेशी मुद्रा के लालच को दूर करे।
- स्त्रियों की नौकरी पर प्रतिबन्ध, साथ ही संस्कृति की रक्षा करने वाली, आदर्श गृहिणी, आदर्श माता एवं आदर्श पत्नी बनी रहे। और संयुक्त परिवार की भावनाओं की रक्षा करने के अलावा बच्चों में सुसंस्कार सिंचित करने का कर्त्तव्य निभाने लायक वातावरण बनाये।
- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों से युक्त अहिंसा संस्कृति की नींव पर रचित संविधान को पुनः जीवित करे।

लोकतन्त्र नहीं वरन् जनता और प्राणियों के हितैषी सन्त-शासन की पुनः स्थापना करे।

ऐसे ही किसी चाणक्य की हमें आवश्यकता है जिसकी नीतियाँ देश का चहुँमुखी विकास कर सके, अन्यथा कूटनीतिक चाणक्यों की हमारे यहाँ कमी नहीं हैं। जिनकी भ्रष्ट बुद्धि से देश में गो-शालाओं के स्थान पर बूचड़-खानों और कारखानों की भरमार हो गई है।

आखिर, आत्मा को अमर करने वाला अमृत है केवल "धर्म" ! चाणक्य ने भी अन्त में जैन दीक्षा ग्रहण करके आत्म-कल्याण का मार्ग पकड़ लिया।

★★

卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. स्त्री हठ

प्रभु महावीर के समय में स्त्री हठ के कारण एक भयानक दुर्घटना घटित हुई जिसके कारण प्रेम से जीवन व्यतीत करने वाले दो भाईयों में शत्रुता की दीवार खड़ी हो गई। इस सत्य-घटना का वास्तविक चित्रण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

मगधपति श्रेणिक की रानी चेलणा के तीन पुत्र थे। कोणिक, हल्ल और विहल्ल। नन्दा नामक रानी से अभय कुमार एवं अन्य रानियों से काल वगैरह दश पुत्र थे। नन्दा ने अभयकुमार के साथ दीक्षा ग्रहण की और अपने दो दिव्य वस्त्र और कुंडल हल्ल-विहल्ल को दिये। "राज्य का उत्तराधिकारी ज्योष्ठ पुत्र कोणिक ही होगा" यह सोचकर राजा श्रेणिक ने हल्ल-विहल्ल को सेचनक नामक विशिष्ट गंध्र-हस्ति और एक दिव्य हार दिया।

कोणिक और काल आदि दस पुत्रों ने पिता श्रेणिक को कैद करके राज्य को आपस में बाँट लिया, किन्तु हल्ल-विहल्ल को कुछ भी नहीं दिया। अन्त में राजा श्रेणिक को कैद में ही विष-पान करके मृत्यु को गले लगाना पड़ा। पिता की अकाल मृत्यु और उनको दिये गये उत्पीड़न से दुःखी होकर कोणिक ने राजगृह के स्थान पर चंपा नगरी को राजधानी बनाया और वहीं बस गया।

इधर हल्ल और विहल्ल अन्तःपुर और परिवार सहित दिव्य हार, कुंडल और दैविय वस्त्रों से सुशोभित होकर, सेचनक हाथी पर सवार होकर, हमेशा नदी तट पर स्नान करने जाते थे। विभंगज्ञान से युक्त हाथी भी हल्ल-विहल्ल की पत्नियों को, उनकी इच्छानुसार विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें करवाता। कभी-अपनी पीठ पर उनको बिठाता, तो कभी सूंढ से झुलाता। कभी-कभी सूंढ से आकाश में उनको स्थिर कर देता। ऐसे अद्‌भुत दृश्य देखकर नगरजन कहने लगे–"चाहे भले ही कोणिक राजा हो, किन्तु राज्य की वास्तविक मजा़ तो हल्ल-विहल्ल ही भोग रहे हैं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार नगरजनों के मुख से प्रतिदिन हल्ल-विहल्ल की प्रशंसा सुनकर कोणिक की रानी पद्मावती ने सोचा– ''जिस प्रकार बिना घी का रुक्ष भोजन व्यर्थ है, उसी प्रकार सेचनक हाथी और दिव्य हार रहित से विशाल साम्राज्य भी फीका है।''

हल्ल-विहल्ल और उनके परिवार की प्रशंसा रानी पद्मावती सहन न कर सकी। उसने मन ही मन एक निश्चय किया–''मेरे पति कोणिक द्वारा ये चीजें बलपूर्वक प्राप्त करूंगी।'' उसने एकान्त में कोणिक को अपनी इच्छा बतायी। कोणिक ने कहा–''भाईयों की सम्पत्ति यदि मैं बलपूर्वक प्राप्त कर लू, तो मैं नीच कहलाया जाऊँगा। अतः ऐसा विचार त्याग दो।'' पर स्त्री हठ तो स्त्री हठ ही होती है। पद्मावती नहीं मानी। आखिर पत्नी–स्नेह के कारण कोणिक को झुकना पड़ा। कुलीन परिवार के पुरुष भी स्त्री के मोह में फँसकर अनर्थ कर देते हैं।

जिस प्रकार पागल आदमी बीच बाजार में अपने बस्त्र उतारकर बेशर्म-नग्न हो जाता है, उसी प्रकार कोणिक ने भी न्याय-नीति-मर्यादा और बंधु-प्रेम को ताक पर रखकर हल्ल-विहल्ल से, बिना अधिकार के दिव्य हार आदि चारों वस्तुओं की माँग की और अन्त में क्रोधित होकर यहाँ तक कह दिया कि यदि तुम लोग ये वस्तुयें नहीं दोगे तो मैं बलपूर्वक ले लूंगा।

हल्ल-विहल्ल ने उत्तर दिया–''स्वयं पिता जी ने ही हमें ये हार आदि दिया है, अतः इन पर हमारा अधिकार है। हाँ .... यदि तुम राज्य में से हिस्सा देने को तैयार हो तो हम हार आदि देने को तैयार हैं।'' पर कोणिक ने ये बात स्वीकार न की। अन्त में हल्ल-विहल्ल ने सोचा–''अब यहां रहना हमारे लिए उचित नहीं है। मुसीबत सिर पर है।'' यह सोचकर दोनों सपरिवार रातोंरात चँपा नगरी से निकलकर वैशाली के महाराजा चेटक मातामह (माता के पिता) के पास गये और उनको अपनी वास्तविक्ता बतायी। चेटक ने उनका स्वागत-सम्मान किया और रहने के लिए सुन्दर व्यवस्था कर दी।

हार आदि के कारण बंधुओं से चिढ़े हुए चिंतित कोणिक ने दूत द्वारा महाराजा (मातामह) चेटक को सन्देश भेजा–''हस्तिरत्न सहित मेरे दोनों भाईयों को वापस करो और यदि वे आने के लिए तैयार न हो तो हाथी, कुंडल आदि चीजें भेज दो। जिस प्रकार हल्ल-विहल्ल आपके दोहित्र है, उसी प्रकार मैं भी आपका दोहित्र हूँ। आपको सब पर समान स्नेह-भाव रखना चाहिए।'' चेटक राजा ने उसी दूत द्वारा कोणिक को सन्देश भेजा कि–''स्वयं पिता द्वारा दी गई सम्पत्ति भाईयों से बलपूर्वक छीन लेना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। ये दोनों मेरी शरण में है। इनकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। दोहित्रो के रूप में तुम सब मेरे लिए समान हो। किन्तु न्याय इन दोनों के पक्ष में है, और फिर शरणागत होने के कारण इनकी रक्षा करना मेरा परम कर्तव्य है। फिर भी यदि तुम राज्य में से हिस्सा देने को सहमत हो तो हाथी, दिव्य-हार आदि सब तुम्हें दिलवा दूँगा।''

दूत ने जाकर कोणिक को राजा चेटक का सन्देश कह सुनाया। यह सुनकर पत्नी के मोह में अन्ध कोणिक आपा खो बैठा और क्रोधान्ध होकर उसने तत्काल युद्ध की तैयारी करवा दी।

तैंतीस हजार हाथी, तैंतीस हजार रथ और तैंतीस करोड़ सैनिकों के साथ कोणिक ने युद्ध के लिए महाराजा चेटक की सीमा की और प्रयाण किया। काल आदि दस भाईयों को भी उसने साथ लिया।

मुकुट धारी अठारह राजा, सत्तावन हजार रथ, सत्तावन हजार हाथी तथा एक करोड़ सैनिकों के साथ राजा चेटक भी युद्ध के लिए तैयार हो गये।

दोनों सेनायें आमने-सामने आ गई और युद्ध के लिए विभिन्न प्रकार के व्यूह रचे गये। कोणिक की सेना में पहले दिन काल को सेनापति नियुक्त किया गया। तुरही के बजते ही युद्ध आरम्भ हो गया। नारियल की तरह युवा सैनिकों के सिर फूटने लगे।

राजा चेटक के पास एक दिव्य बाण था। जिस लक्ष्य पर छोड़ा जाये उसे मारकर ही रहे। चेटक का प्रण था कि एक दिन में केवल एक बाण छोड़ा जाये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संध्या समय कोणिक की सेना का सेनापति "काल" जैसे ही निकट आया, चेटक ने उस अमोघ बाण को उस पर छोड़ दिया। बाण ने उसके शरीर को बींध दिया और वह तत्काल मर गया। सूर्यास्त होते ही युद्ध विराम हो गया।

दूसरे दिन सेनापति नियुक्त हुए कोणिक के दूसरे भाई महाकाल को भी राजा चेटक ने उसी प्रकार मार गिराया। इस प्रकार दस दिन में दसों भाईयों को चेटक ने मार गिराया। शोकग्रस्त कोणिक सोचने लगा कि चेटक के दिव्य बाण के विषय में न जानकर, मैंने व्यर्थ में ही काल आदि दस भाईयों को गँवा दिया। और यदि में समय रहते सावधान न हुआ तो कल मेरी भी यही दशा होगी। यह सोचके कोणिक देवता की आराधना में लीन हो गया। पूर्वभव के किसी ऋण से शक्रेन्द एवं चमरेन्द्र कोणिक के पास आये। शकेन्द्र ने कहा–"कहो कोणिक तुम्हें क्या चाहिए ?"

"चेटक के प्राण।"–कोणिक ने उत्तर दिया।

"नहीं ··· यह असम्भव है। साधर्मिक और श्रावक चेटक की हत्या हम नहीं कर सकते, किन्तु युद्ध में तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे।

यह कहकर शक्रेन्द्र ने उसकी रक्षा का वचन दिया जब कि चमरेन्द्र ने कोणिक को दो युद्ध दिये। पहला युद्ध "महाशिला कंटक" नामक था, जिससे शत्रु पक्ष की तरफ कंकर फैंके जाये तो विशाल शिलायें बनकर गिरते हैं और काँटे फैंके जाये तो महाशस्त्र बनकर शत्रु पक्ष का नाश कर देते हैं। दूसरे युद्ध का नाम "रथादिमुशल" था, जिसमें सारथि बिना ही शत्रु पक्ष की तरफ रथ और मुशल छोड़े जाये तो शत्रु सेना बुरी तरह परास्त हो जाती है। दोनों युद्धों को प्राप्त कर दुष्ट कोणिक, युद्ध भूमि में आया और चमरेन्द्र द्वारा प्राप्त दो युद्धों से जिस प्रकार खई से दही बिलोया जाता है, उसी प्रकार वह चेटक की सेना को बिलोने लगा। केरी के कचूमर की तरह वह सेना को कुचलने लगा। अपनी सेना का ऐसा भयंकर संहार देखकर क्रोधित राजा चेटक ने दिव्य बाण को कान तक खींचकर कोणिक की तरफ छोड़ा। स न न न न न ··· पर व्यर्थ ··· क्योंकि उससे पहले ही शक्रेन्द्र ने कोणिक के सामने वज्र की दीवार खड़ी कर दी। चेटक का दिव्य बाण उस पारदर्शक दीवार से टकराकर नीचे गिर गया। एक दिन में केवल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बाण छोड़ने का प्रण के कारण चेटक ने दूसरा बाण नहीं छोड़ा। दूसरे दिन भी चेटक ने दूसरा बाण छोड़ा तो उसकी भी वैसी ही हालत हुई।

युद्ध में पहले दिन ९६ लाख मनुष्यों का संहार हुआ जब कि दूसरे दिन ८४ मनुष्य लाख मृत्यु को प्राप्त हुए। असंख्य हाथी-घोड़े आदि पशु भी नाश हुए। कोणिक पत्नी की एक छोटी सी हठ के कारण केवल दो दिन में एक करोड़ अस्सी लाख लोग मृत्यु को प्राप्त हुए।

मारे गये उसमें एक ही मनुष्य देवलोक में गये व एक ही सैनिक मनुष्य भव में। शेष सब दुर्गति को प्राप्त हुए।

दैवी शक्ति के समक्ष विफल होकर राजा चेटक अपनी सेना सहित वैशाली नगरी में प्रवेश कर गया। कोणिक ने अपनी शक्तिशाली सेना से वैशाली को चारों तरफ से घेर लिया।

इधर हल्ल और विहल्ल सेचनक हाथी पर बैठकर नगर को घेरे हुए सैनिकों को रात में कुचलने लगे। इस प्रकार अपने सैन्य का संहार देखकर चिंतित कोणिक ने चतुर मंत्रियों की सलाहानुसार हाथी के आने के मार्ग पर गहरी खाई खुदवा दी और उसमें अंगारे डलवा दिये। अपने विभंग ज्ञान से यह सब जानकर हल्ल-विहल्ल द्वारा प्ररित हाथी रात को आगे नहीं बढ़ा। तब हल्ल-विहल्ल उसे फटकारते हुए बोले–"क्या तुम शत्रुओं से डरते हो ? आगे क्यों नहीं बढ़ते ? तुमसे अच्छा तो पालतू कुत्ता होता है जो कि अपने स्वामी के प्रति वफादार होता है, जबकि तुम हमारे लिए वफादार नहीं हो। धिक्कार है तुम पर ....

ऐसे मर्मान्तक बचन सुनकर उस वफादार हाथी ने दोनों को बलपूर्वक सूंढ से नीचे उतारा और स्वयं जलने अंगारों की खाई में कूद पड़ा। एक पशु में भी किनती कृतज्ञता, सज्जनता और धैर्य था। दुर्ध्यान से मृत्यु पाकर हाथी प्रथम नर्क में गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

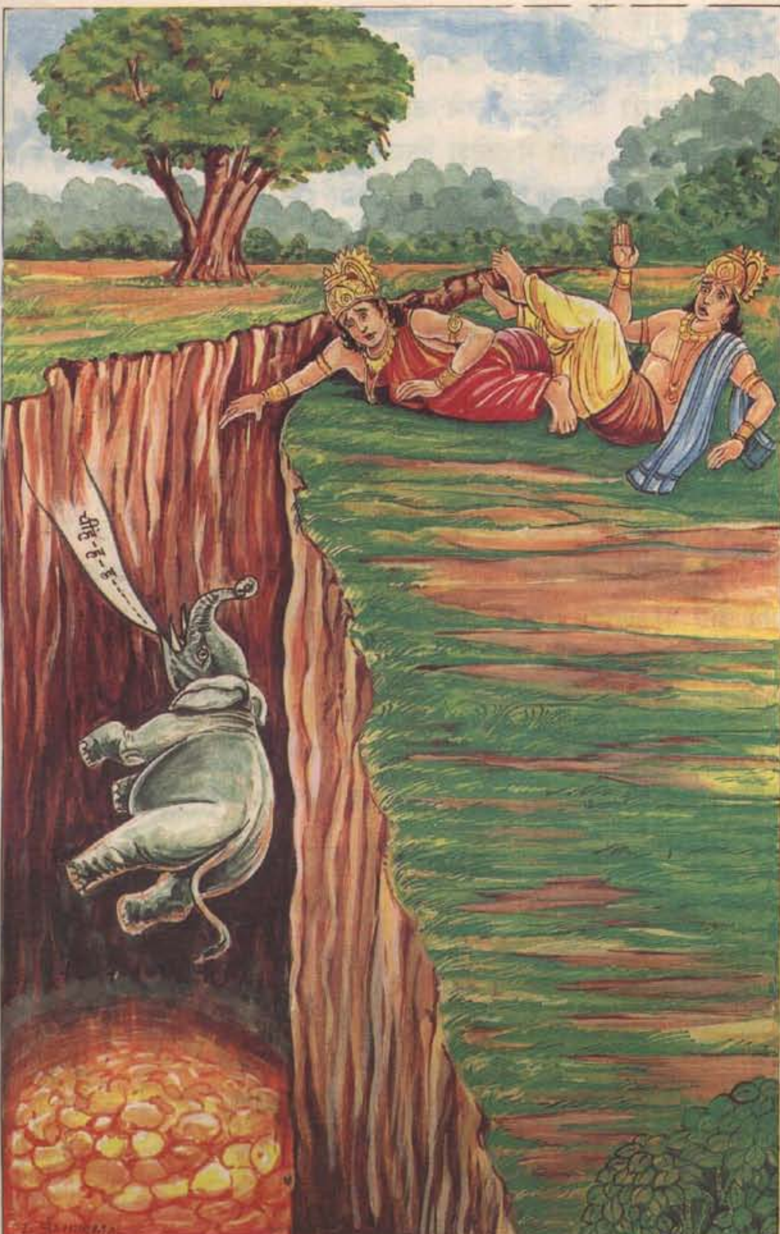

यह देखकर पश्चाताप करते हुए दोनों कुमारों ने सोचा–"धिकाकर है हम पर कि हमने हाथी आदि के लिए देश (मातृभूमि) का त्याग किया। भाई को शत्रु बनाया और मातामह चेटक को भारी संकट में डाल दिया। हाथी को भी अग्नि की खाई में कुदवाकर मोत के मुंह में धकेल दिया। अब, यह जीवन तो व्यर्थ है ... यदि जीवित रहे तो प्रभु वीर के शिष्य बनकर रहेंगे।"

उसी समय शासनदेवी उन दोनों को प्रभु महावीर के पास ले गई। दोनों ने प्रभु से दीक्षा ग्रहण की, तत्पश्चात् ग्यारह अंगों की शिक्षा प्राप्त करके, गुणरत्न तपश्चर्या करके एवं अंत में समाधि से संलेखना करके, दोनों अनुत्तर विमानवासी देव हुए।

इधर किसी भी प्रकार वैशाली नगरी को प्राप्त करने में असमर्थ कोणिक ने प्रण किया कि यदि इस वैशाली नगरी को गधे युक्त हल से जोतया न सका तो मैं पर्वत से कूदकर आत्महत्या कर लूंगा। तभी आकाशस्थ किसी देवी ने कोणिक से कहा–"यदि कुलवालक मुनि को मागधिका नामक वेश्या द्वारा यहाँ लाया जाय तो उनके द्वारा चेटक की वैशाली नगरी पर कब्जा किया जा सकता है।" यह सुनकर प्रसन्न होकर कोणिक ने (मागाधिका) वेश्या को बुलाया और उसे आदेश दिया कि किसी भी प्रकार वनस्थ कुलवालक मुनि को वश में करके मेरे समक्ष प्रस्तुत किया जाये।

मागाधिका भी कपटी श्राविका का स्वांग रचकर, जंगल में जिस स्थान पर कुलवालक मुनि तपश्चर्या कर रहे थे, वहाँ पहुँच गई और अपने भोजन को ग्रहण करने की उनसे विनती करने लगी, साथ में यह भी बहाना किया कि वह स्वयं यात्रा पर जा रही है। मुनि ने भी उसकी भावनाएँ समझकर उसका आमन्त्रण स्वीकार किया। वेश्या ने मादक पदार्थ युक्त मोदक मुनि को भिक्षा में दिया, जिसको मुनि पचा न सके और उन्हें उल्टी-दस्त होने लगे। कुटिल वेश्या सेवा के बहाने मुनि के निकट आने लगी और अंग मर्दन आदि करते-करते यावत् हाव-भाव और कटाक्षों से मुनि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृदय को पिघला दिया। पूर्व में मुनि ने गुरु का घोर अपमान किया था जिससे एक स्त्री द्वारा उनका पतन हुआ। कुलवालक मुनि अब एक भी पल वेश्या के बिना नहीं रह सकते थे। मागधिका, मुनि को कोणिक के पास ले गई। कोणिक ने उनका आदर-सत्कार करके वैशाली नगरी को प्राप्त करने का उपाय पूछा। उपाय प्राप्त करने के लिए कुलवालक मुनि ने निमित्तज्ञ का स्वांग रचकर वैशाली नगरी में प्रवेश किया। नगरी में घूमते-घूमते उन्होंने नगर के आधार स्तम्भ समान मुनि सुव्रत स्वामी का स्तूप देखा। जिसका प्रतिष्ठा-लग्न उत्तम होने के कारण नगर अखंड अटूट रहता था।

इधर अनेक दिनों से नगर में कैद त्रस्त नगरजनों ने निमित्तज्ञ (कुलवालक) से पूछा-"ज्योतिषी महाराज ! इस नगर के द्वार कब खुलेंगे ? इस कैद से हम लोग परेशान हो गये हैं। क्या इससे मुक्त होने का कोई उपाय है ?"

जैसा कुलवालक चाहते थे, वैसा ही हुआ। उन्होंने कहा-"अरे नगरजनों ! जब तक यह पापी स्तूप यहाँ है, तब तक मुक्ति असंभव है। यदि इस स्तूप को उखाड़ दिया जाये तो नगर को घेरा हुआ सैन्य वापस हट जायेगा।"

धूर्त कुलवालक के ऐसे वचन सुनकर नगरजनों ने स्तूप उखाड़ना आरम्भ किया। ज्यों-ज्यों स्तूप उखड़ता गया, त्यों-त्यों लोगों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए, कुलवालक के संकेतानुसार कोणिक राजा धीरे-धीरे अपना सैन्य दूर हटाता गया। लोगों को कुलवालक मुनि की बात पर इतना अधिक विश्वास हो गया कि उन्होंने मुनि सुव्रत स्वामी का मजबूत स्तूप को जड़ से उखाड़ फेंक दिया। स्तूप के उखड़ते ही कुणिक ने सैन्य सहित आक्रमक रूप से नगर में प्रवेश किया और वैशाली पर कब्जा कर लिया।

बाजी हारते हुए देखकर राजा चेटक ने अनशन पूर्वक नमस्कार महामन्त्र को स्मरण करते हुए, गले में लोहे की पूतली बाँधकर कुए में कूद पड़े। उसी समय धरणेन्द्र का आसन कंपायमान हुआ और वहाँ आकर धरणेन्द्र ने चेटक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को थाम लिया और साधार्मिक भाव से अपने भवन में रहने का स्थान दिया। वहाँ सम्यग आराधना सहित अनशन पूर्ण करके राजा चेटक स्वर्ग को प्राप्त हुए। क्रोधित कोणिक अपना प्रण पूरा करने के लिए गधे युक्त हल से वैशाली नगरी को जोतवाकर वापस अपने नगर गया।

अबला स्त्री भी सबला बनकर पुरुषों को रिझाकर किस प्रकार विनाश को प्रेरित करती है–यह इस दृष्टान्त से सहज ही समझा जा सकता है।

स्त्रीगत दोषों को दर्शाने वाला एक श्लोक इस बात का प्रमाण है–

''सोअसरी दुरिअदरी कवडकूड़ी महिलिआ किलेसकरी।
वइरविरोअण अरणि दुक्खखणी सुखपडिवक्खा॥''

–शोक की सरिता, दुष्टता का मन्दिर, वैराग्नि को बढ़ाने वाली, दुःखों की खान, सुख की विरोधी स्त्री, वास्तव में कलेश कराने वाली होती है।

★★

जो माँ-बाप की सेवा करता है, वही गुरु-सेवा के लिए योग्य बनता है। और जो गुरु-सेवा करता है वही भगवान का भक्त बनने लायक है।

–प. पू. आ. वि. कलापूर्ण सू. म.

● ●

यंत्र (टीवी, फोन आदि) द्वारा दूर रहे हुए व्यक्ति के साथ बात कर सकते हैं। मंत्र (प्रभु-नाम-जप) के द्वारा दूर रहे भगवान के साथ बात कर सकते हैं।

–प. पू. आ. वि. कलापूर्ण सू. म.

● ●

मंत्र (नाम-जप) द्वारा भगवान का सानिध्य मिलता है। मूर्ति के द्वारा भगवान का दर्शन होता है। ध्यान द्वारा भगवान के साथ मिलन होता है।

–प. पू. आ. वि. कलापूर्ण सू. म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. भागीरथी जाह्नवी का संक्षिप्त इतिहास

हिन्दुओं द्वारा पवित्र मानी गई गंगा नदी के भागीरथी और जाहनवी दो प्रसिद्ध नाम हैं।

किस प्रकार (कैसे) रखे गये ये दो नाम? उसका संक्षिप्त इतिहास जैन मतानुसार कुछ इस प्रकार है–

इस अवसर्पिणी के दूसरे तीर्थंकर धर्म-चक्रवर्ती श्री अजीतनाथ प्रभु के लघु (चचेरे) बंधु 'सगर' षड्खण्ड पर विजय प्राप्त करके चक्रवर्ती राजा बने।

उनके साठ हजार पुत्रों में से सबसे बड़ा पुत्र था जह्नु। एक बार जह्नु ने एक बेजोड़ कार्य करके पिता को प्रसन्न कर दिया।

प्रसन्न होकर राजा सगर ने उससे वरदान माँगने के लिए कहा–

जह्नु ने अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा–"पिताजी ! बंधुओं सहित समग्र पृथ्वी को देखने की मेरी इच्छा है। सो दण्डरत्न आदि लेकर समग्र पृथ्वी की परिक्रमा करने की अनुमति प्रदान करें।"

पिता ने उसको अनुमति दे दी।

जह्नु ने मन्त्री, सैन्य और साठ हजार बंधुओं के साथ प्रयाण किया।

घूमते-घूमते वे अष्टापद पर्वत के निकट आ पहुँचे। इस महान तीर्थ पर रत्नों के मन्दिरों और स्व-काया के अनुसार चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों की मणियुक्त प्रतिमाओं का दर्शन करते हुए जह्नु आदि का हृदय झूम उठा। रोया-रोया पुलकित हो उठा। मंत्रियों से यह जानकर कि उनके पूर्वज भरत चक्री ने इन चैत्य-बिम्बों की स्थापना की थी, जह्नु के हृदय में भी नूतन चैत्यों का निर्माण करने की लालसा जागृत हुई।

(अनुवंश के संस्कार हजारों वर्ष तक संतान-संतति में अवतरित होते हैं।)

जह्नु ने सेवकों को आदेश दिया–

ऐसा ही कोई पर्वत खोज निकालो–जिस पर नूतन चैत्यों का निर्माण किया जा सके। परन्तु गहरी खोज के बाद भी ऐसा कोई भी पर्वत सेवकों को दृष्टिगोचर नहीं हुआ। जह्नु आदि ने सोचा कि कालान्तर में ये चीजें कहीं चोरी न हो जायें। इसलिए रत्न-मणिमय इन चैत्यों की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

यह सोचकर तीर्थरक्षा के लिए दण्ड रत्न की सहायता से पर्वत के चारों ओर एक हजार योजन गहरी खाई खुदवाई। परन्तु इससे पृथ्वी के नीचे स्थित भवनपति-निकाय के देवों के आवासों में रेत घुसने लगी। देवों ने अपने अधिपति ज्वलन-प्रभ से बात की। ज्वलन-प्रभ ने ऊपर आकर जह्नु आदि को झिड़कते हुए कहा कि अब से ऐसी नादानी करोगे तो मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा। यह सूचना देकर ज्वलन-प्रभ चले गये, किन्तु तीर्थरक्षा के उत्साह में जह्नु आदि ने इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने दण्डरत्न की सहायता से गंगा को खींचकर खाई को जल से भर दिया। पानी, (पृथ्वी के) नीचे स्थित नागनिकाय देवों के आवासों तक पहुँच गया और उनके आवास कीचड़ युक्त (मिट्टी युक्त) पानी से सनने लगे। देवों ने फिर से अपने स्वामी ज्लवन-प्रभ से बात की। ज्वलन-प्रभ क्रोध से आग-बबूला हो गया। उसने जह्नु आदि के समक्ष दृष्टि विष सर्प छोड़ दिये। और उन सर्पों ने साठ हजार बन्धुओं को एक साथ अग्नि-ज्वालाओं से जलाकर खाक कर दिया। तीर्थ रक्षा के शुभ ध्यान में मरकर वे स्वर्ग को प्राप्त हुए।

इस घटना से अत्यन्त शोक-मग्न (शोक-ग्रस्त) मंत्री-सामन्तों आदि ने सोचा–अब किस मुँह से महाराजा के पास जाये?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

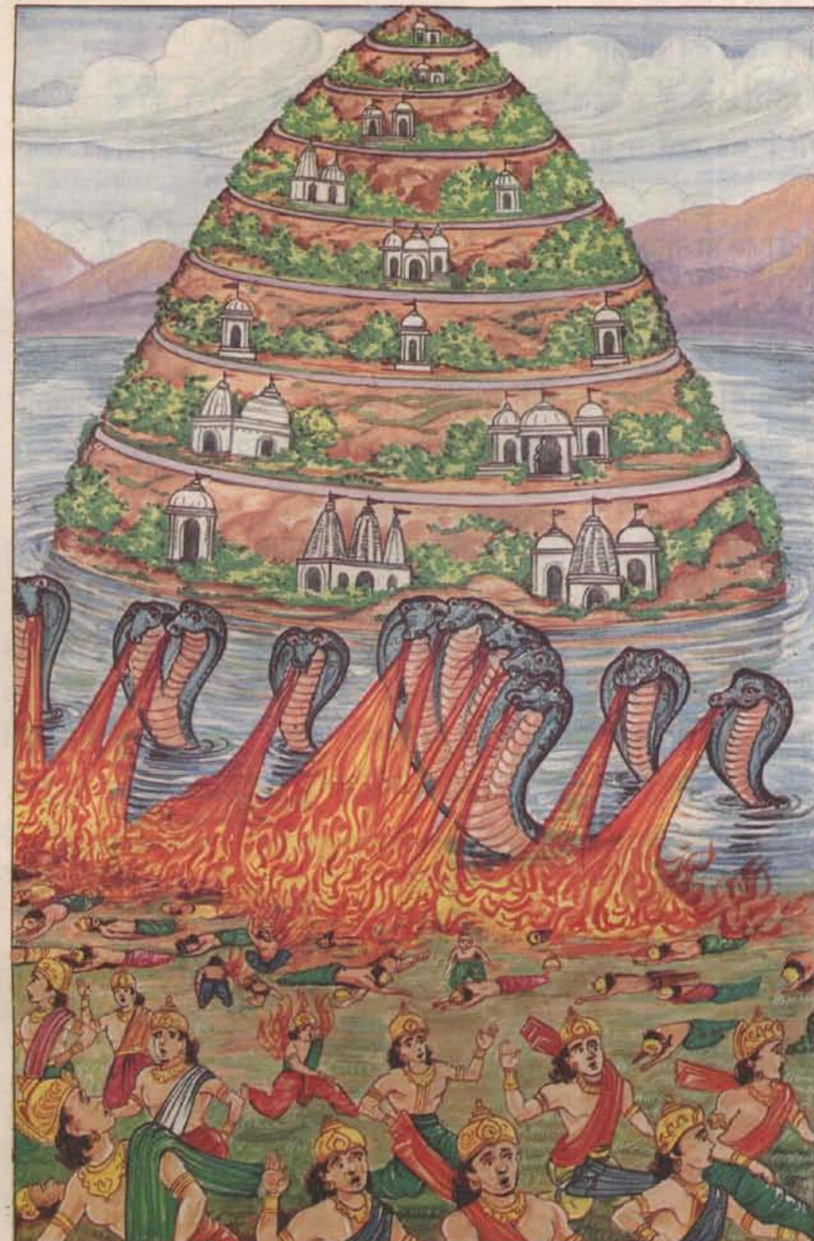

स्वयं जीवित रहकर साठ हजार पुत्रों की मृत्यु की सूचनाा उन्हें कैसे दे? अन्त में सबने निष्कर्ष निकाला कि सिर्फ हमारे पास मरने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

मंत्री-सामन्त आदि इसी चिन्ता में थे इसी बीच वहाँ एक ब्राह्मण आया और उनसे कहा–"कर्म का गणित अटल होता है। अब चिन्ता करने से कुछ नहीं होगाा। मैं स्वयं राजा के समक्ष पूरा वृत्तान्त कह सुनाऊँगा। तुम लोग निश्चित रहो। जब मैं संकेत करूँ तब तुम सब राजा के समक्ष उपस्थित होना।"

ऐसा कहकर ब्राह्मण कहीं से एक अनाथ मनुष्य का शव (मृत शरीर) ले आया और उसको कन्धे पर उठाकर सगर चक्री के दरबार में आया। और फूट-फूटकर रोने लगा।

सगर ने रोने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा–"महाराज ! मेरे पुत्र को जहरीले नाग ने डस लिया है। जिससे यह अचेत हो गया है। न तो बोलता है और न ही हिलता है। अतः हे नाथ ! कृपया मेरे इकलौते पुत्र को जीवन दान दीजिये।"

सगर ने वैद्यों को बुलाया।

राजा के पुत्रों की मृत्यु (से) सम्बन्धित सारी हकीकत से अवगत वैद्यों ने नाड़ी परीक्षण करके उस पुत्र को मृत घोषित किया। सगर ने वैद्यों से पूछा–"इस पुत्र को पुनः जीवित करने का कोई उपाय?"

माान्त्रिक (वैद्य) ने कहा–"हाँ राजन् ! जिस घर में आज तक किसी की मृत्यु न हुई हो, ऐसे घर की चुटकी भर राख यदि मिल जाय तो हम इस ब्राह्मण-पुत्र को पुनः जीवित कर सकते हैं।

राजा ने सेवकों को आदेश दिया।

सारा नगर घूमने के बाद भी सेवकों को कोई ऐसा घर नहीं मिला जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज-सेवकों ने राजा को सारी हकीकत बताई।

अब कोई उपाय शेष न था, अतः ब्राह्मण राजा को समझाने लगा।

"भूदेव ! मृत्यु एक साधारण घटना है। उसके पंजों से कोई मुक्त नहीं हो सकता। चाहे करोड़ों की सम्पत्ति का स्वामी क्यों न हो? और धनवन्तरी वैद्य भी निकट क्यों न हो? सबके सामने यमराज अपने भक्ष्य को लेकर चलते बनते हैं?"

"अन्य लोगों की बात छोड़ो, मेरे पूर्वज राजा भी मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। मैं उनसे भी नहीं बचा सका था और न कोई मुझे मृत्यु से बचा सकता है।

"हाँ.... सिंह के मुख से मृग का बच्चा मुक्त हो सकता है, किन्तु मृत्यु के मुख से जीव को बचाना असम्भव है।"

ब्राह्मण बोला–"राजन् ! मैं यह सब जानता हूँ। किन्तु मेरे इकलौते पुत्र की मृत्यु से मेरा वंश समाप्त हो जायेगा। अतः महाराज ! किसी भी प्रकार मेरे पुत्र को पुनः जीवित कर मुझे पुत्र-भिक्षा प्रदान कीजिये। मैं आपका उपकार आजीवन नहीं भूलूँगा।"

राजा बोले–"कोई भी मन्त्र, तन्त्र, शास्त्र, रसायन या औषधि मृत मनुष्य को पुनःजीवित नहीं कर सकती। यह बात मेरे सामर्थ्य से बाहर है। इसलिए दुःख को छोड़ों।" "विपत्ति में आप जैसे विद्वान विप्र का खेद (दुःख) करना उचित नहीं है। मृत को पुनः जीवित करने के स्थान पर मृत्यु को ही सदा के लिए मौत देने वाले धर्म-कार्य को सज्जन लोगों को अपनाना चाहिए" यह कहकर राजा शान्त हो गया।

अब लोह गरम है–यह सोचकर ब्राह्मण ने मौका देखकर धीरे-से राजा से कहा–"महाराज ! आपके (भी) साठ हजार पुत्र एक साथ मृत्यु के ग्रास बन गये हैं, सो उनके लिए भी आपको दुःख नहीं करना चाहिए।"

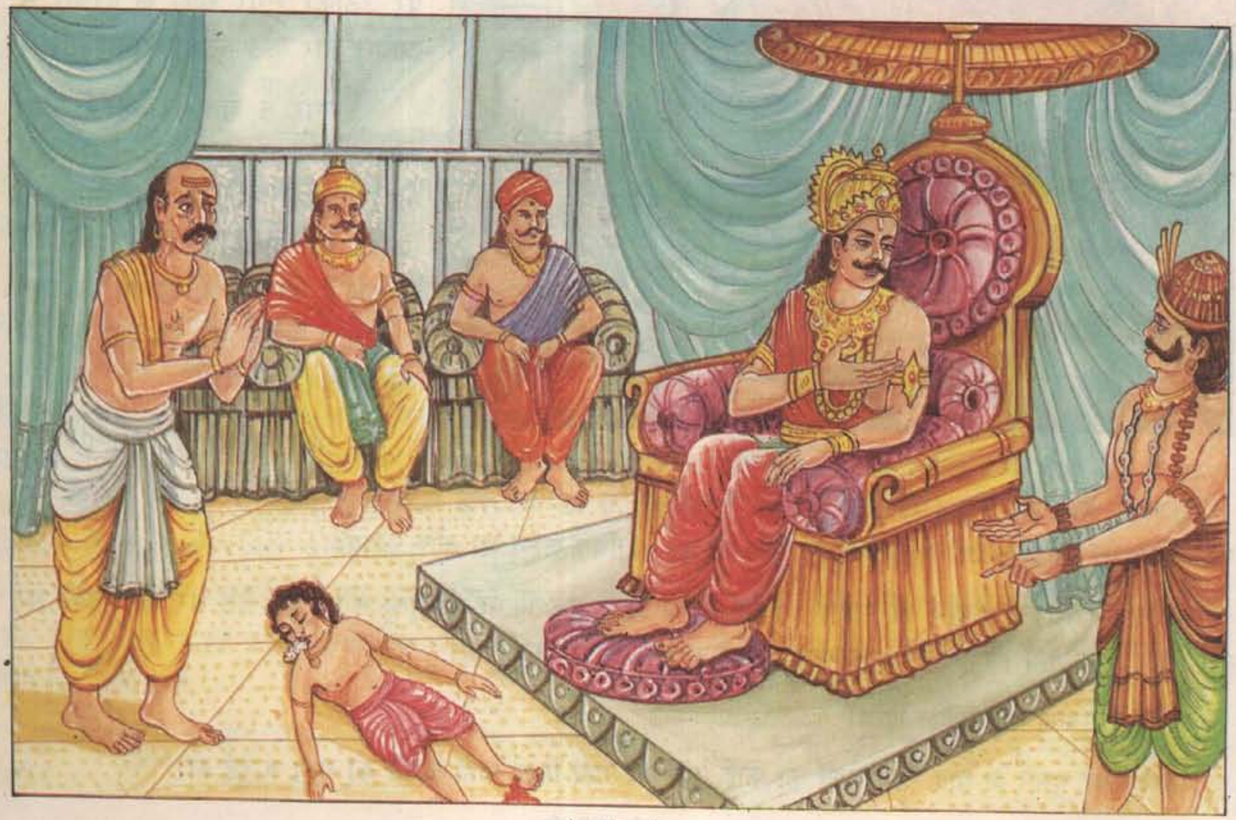

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उसी समय ब्राह्मण के संकेतानुसार मंत्रियों–सामन्तों आदि ने राज दरबार में प्रवेश किया। और राजा को पुत्रों की मृत्यु का पूरा वृतान्त कह सुनाया। सगर चक्री धरती पर यों गिरे, मानो वज्राघाात हुआ हो।

कुछ चैतन्य पाकर वे करुण आक्रन्द करने लगे। विधाता को धिक्कारने लगे। और कठोर हृदय को भी कँपा दे ऐसा विलाप करने लगे।

इस प्रकार बहुत विलाप करने के बाद ब्राह्मण ने राजा से कहा–''राजन् ! थोड़ी ही देर पहले आप मुझे निषेध कर रहे थे, अब आप स्वयं क्यों विलाप कर रहे हो?''

''महाराज ! प्रिय व्यक्ति का वियोग अच्छे-खासे पत्थर दिलों को भी पिघला देता है।

जिनको लोह-जंजीरों से जकड़ना सम्भव नहीं, वे स्नेह-तंतुओं जकड़े जाते हैं। इसीलिए प्रिय व्यक्तियों का वियोग उनके लिए असहनीय होता है।''

फिर भी–

''जिस प्रकार सागर तूफानों को झेलता है, उसी प्रकार धीर पुरुषों को भी आपत्तियों को झेलना सीखना चाहिए।

इस प्रकार, मंत्रियों एवं ब्राह्मण के अनेक हितवचनों से कुछ शान्त होकर सगर चक्री ने पुत्रों का मरणोत्तर कार्य किया। ''दुःख का औषध समय''–समय बीतते-बीतते राजा का दुःख शान्त हुआ।

इधर दण्डरत्न द्वारा खींचकर लाई गई गंगा नदी की बाढ़ से, अष्टापद पर्वत के निकट स्थित गाँवों में बहुत नुकसान हुआा, अतः ग्राम्यजनों ने राजा से शिकायत की। सगर ने जह्नु के पुत्र (अपने पौत्र) भगीरथ को ग्राम्यजनों का कष्ट दूर करने का काम सौंपा। भगीरथ ने वहाँ जाकर नागेन्द्र ज्वल-प्रभ को अट्ठम का तप करके प्रसन्न कर दिया।

नागेन्द्र ने उसको (गंगा ले जाते समय) नागकुमार देवों द्वारा कोई उपद्रव नहीं होगा–ऐसा वचन देकर उसका भय दूर किया तत्पश्चात् भगीरथ नागदेवता की पूजा करके दण्डरत्न की सहायता से गंगा को खींचकर उत्तरी समुद्र की ओर ले गया और उसे समुद्र में मिला दिया।

इस प्रकार–

सगर-पुत्र जह्नु द्वारा ख़ींचकर लाने से गंगा का ''जाहनूवी'' नाम प्रसिद्ध हुआ और जह्नु के पुत्र भगीरथ द्वारा गंगा को समुद्र में मिला देने से उसका नाम ''भागीरथी'' प्रसिद्ध हुआ।

नागपूजा करके एवं उन गाँवों की समस्याओं का निवारण करने के पश्चात् भंगीरथ अयोध्या लौटा।

सगर चक्री ने सम्मानपूर्वक प्रवेश करवाने के बाद ठाठ-बाठ से उसका राज्याभिषेक किया। तत्पश्चात् षड्खण्ड राज्य को त्यागकर सगर चक्री ने अजीतनाथ भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की। और अति दुष्कर तप को तपकर कैवल्य पाकर मुक्त हुए।

सगर के साठ हजार पुत्रों को एक साथ अग्नि-शरण होकर मृत्यु को गले लगाना पड़ा, उसके पीछे क्या कारण था? और किस प्रकार? यह जानने के लिए पढ़िये, अगला प्रकरण...

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. तीर्थ की आशातना न करें

समूह में किया हुआ पापकर्म प्रायः समूह में ही उदय होता है। और समूह में किया हुआ पाप या पुण्य कर्म का बल एकदम बढ़ जाताा है। जिसका फल भी उन कर्मों के उदय काल में प्रकृष्ट रूप से अनेक बार अनुभव होता है।

चक्रवर्ती सगर के पौत्र, भगीरथ का अयोध्या के सिंहासन पर राज्याभिषेक होने के बाद एक बार ज्ञानी भगवन्त नगर में पधारे। देशना के अन्त में भगीरथ ने नम्रतापूर्वक एक प्रश्न उनसे पूछा।

''भगवन्त ! मेरे पिता जह्नु आदि साठ हजार बंधुओं ने किस दुष्कर्म के उदय से एक साथ अग्नि-शरण होकर आयु पूर्ण की?''

ज्ञानी भगवन्त ने उत्तर दिया–

यह दुष्कर्म इस भव का नहीं है। किन्तु अनेक भव पूर्व का है। ये साठहजार बन्धु पूर्व के किसी भव में नीच जाति के मनुष्य थे और एक ही गाँव में साथ-साथ रहते थे।

एक बार उस गाँव के निकट के जंगल से छहरिपालित संघ सम्मेतशिखर की तीर्थ यात्रा को जा रहा था।

सूचना मिलते ही इन साठ हजार मनुष्यों ने एक साथ छापा मारकर संघ को लूट लिया। संघ के यात्री तितर-बितर होकर भागने लगे। उस समय गाँव में रहने वाले एक कुम्हार ने उन साठ हजार मनुष्यों को ऐसा न करने के लिए बहुत समझाया। किन्तु वे समझे नहीं। अन्त में संघ तो एक तरफ रहा, लुटेरे लूट-पाट करके अपने गाँव वापिस आ गये।

एक बार की बात है।

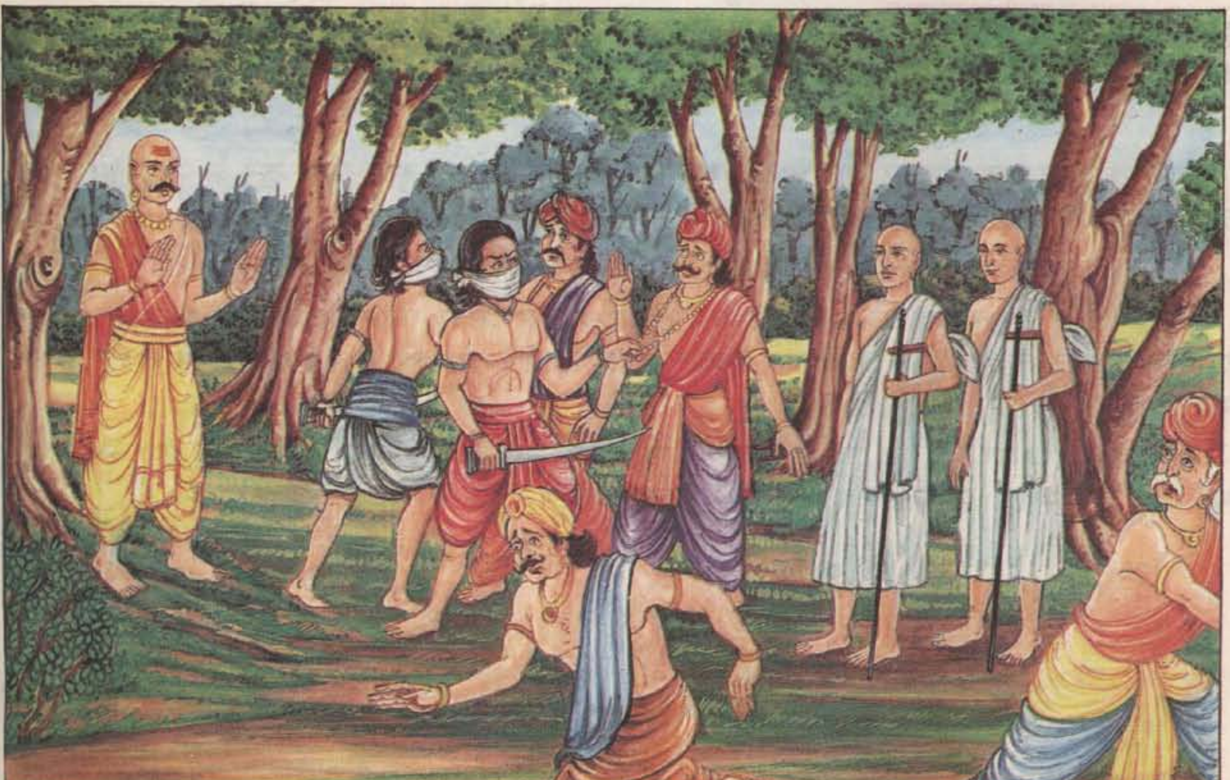

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

82799

उन चोरों में से एक चोर निकट के गाँव में चोरी करके लौट रहा था, इसी बीच जिसके घर चोरी हुई थी उसने कोतवाल से शिकायत कर दी। कोतवाल कुछ सैनिकों के साथ उस चोर का सूत्र ढूँढ़ते-ढूँढ़ते चोरों के उस प्रदेश तक आ पहुँचा, किन्तु उससे पहले ही चोर गाँव में ही कहीं छुप गया। इससे क्रोधित होकर कोतवाल ने उस गाँव के सारे द्वार बन्द करवा दिये। (जिससे कोई बाहर न निकल सके।) और गाँव के चारों ओर आग लगा दी। थोड़ी ही देर में साठ हजार लुटेरे जलकर मर गये। सौभाग्य से चोरों को हित-वचन कहने वाला वह कुम्हार उस समय कहीं बाहर गया था।, अतः वी अग्नि-दुर्घटना से बच गया।

इस प्रकार जंगम तीर्थ समान श्री संघ की आशातना ने उन चोरों को उसी भव में चमत्कार दिखा दिया। कर्म कहता है–मेरे यहाँ देर है, पर अँधेर नहीं अर्थात् देर से ही सही, कर्मों का फल अवश्य मिलता है।

अत्युत्कृष्ट स्तर के पुण्य या पाप का फल तुरन्त मिल जाता है। और इसी जन्म में अपना प्रभाव दिखा देता है। उसमें भी देव-गुरु-धर्म (तत्त्वत्रयी) और ज्ञान-दर्शन-चारित्र (रत्नत्रयी) की आशातना का फल तो भयंकर विपत्तियों के साथ मनुष्य पर टूट पड़ता है। इसलिए परमेष्ठि भगवंतों या श्री संघ की आराधना कम-ज्यादा हो तो चल सकता है परन्तु जानबूझ कर की गई आशातना के लिए हमें क्षमा नहीं मिल सकती।

लुटेरे आग में जलकर राख हो गये किन्तु उनका कर्म जीवित था जो कि अग्नि शरण नहीं हुआ था। यह याद रखना चाहिए कि हँसते-हँसते किया हुआ छोटा-सा पापकर्म भी–प्रायश्चित्त न करने से मेरु (पर्वत) सा विशाल होकर बदला लेने के लिए पूरी तैयारी के साथ मनुष्य पर टूट पड़ता है। कुकर्मों को जीवित रखकर मरना, कुत्ते की मौत मरने के समान है, अर्थात् पाप कर्मों का बोझ लेकर नहीं मरना चाहिए। सारे लुटेरे मरकर जंगल में सूक्ष्म जीवों के रूप में उत्पन्न हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार वहाँ आये हुए एक हाथी के पाँव तले कुचलकर वे सब मरकर लम्बे समय तक कु-योनि में भटकते रहे। उस दौरान बहुत सारे कष्ट भोगकर कुछ पुण्य की पूँजी एकत्रित की और सगर चक्री के पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। पूर्व में संघ की आशातना से उनके बहुत से कर्म कट गये थे और जो कर्म शेष रह गये थे उसके लिए उन्हें इस भव में एक साथ अग्नि द्वारा मृत्यु को गले लगाना पड़ा।

निःसंदेह, दुष्कर्मों का फल उन्हें भुगतना पड़ा किन्तु तीर्थ-रक्षा के शुभ-परिणाम के फलस्वरूप उन्होंने देवगति भी प्राप्त की।

जंगम (संघ स्वरूप) तीर्थ की आराधना से वे अग्नि-शरण हुए।

स्थावर (अष्टापद) तीर्थ की आराधना से वे अमर (देव) हुए।

चोरों को हित वचन कहने वाला कुम्हार भी मृत्यु के बाद अन्यत्र धनवान श्रेष्ठि बना। कालान्तर में पुण्य उपार्जन करके राजा बना। और दीक्षा प्राप्त करके स्वर्ग में गया। और वही कुम्हार का जीव भगीरथ सगर के पौत्र (जह्नु के पुत्र) के रूप में उत्पन्न हुए।

भगीरथ ने तीर्थ की आशातना एवं आराधना के फल को प्रत्यक्ष देख-सुनकर ज्ञानी भगवन्त के समक्ष श्रावक व्रत का उच्चरण किया और नगर को लौटा।

★★

卐

सद्‌गुरु ....तीर्थाधिराज है।
उनका विनय-बहुमान ....गुणाधिराज है।
उनकी आशिष मिले वह दिन ....पर्वाधिराज है।
उनका नाम-मंत्र .... मंत्राधिराज है।
उनकी सेवा का रस .... रसाधिराज है।
गुरु-कृपा-प्राप्त शिष्य ....सर्वाधिराज है।

–मुनि आत्मदर्शन वि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. देव बनना है या दिवालिया ?

मानव में से हम फिर मानव बन सकते हैं। देव भी बन सकते हैं और पशु व नर्क के भव भी प्राप्त कर सकते हैं। विशिष्ट संघयण, सामग्री आदि के अभाव से हम तत्काल सिद्धगति प्राप्त नहीं कर सकते परन्तु तप-त्याग-वैराग्य एवं विरति आदि उच्च कक्षा के गुणों द्वारा उच्च कक्षा की देवगति तो अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। यदि यह भी सम्भव न हो तो मानव देह से फिर मानव-भव प्राप्त करने के लिए दया-दान-न्याय-नीति आदि मानवीय गुणों की साधना तो कर ही सकते हैं। तभी हम मानव भव प्राप्त करने के लिए योग्य होंगे और यदि हम इतना भी नहीं कर सकते तो नर्क और पशु भवों के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

इसी बात को सिद्ध-करने वाला एक सरल-बोधदायक दृष्टान्त उत्तराध्ययन सूत्र के सातवे अध्याय में पिरोया गया है।

एक नगर में एक धनाढ्य सेठ थे। उनके तीनों पुत्र यौवन की दहलीज पर कदम रख रहे थे। सेठ ने उनकी परीक्षा लेने का निर्णय किया। प्रत्येक पुत्र को एक-एक हजार सोनेया देकर अलग-अलग नगरों में व्यापार के लिए भेजा और उन्हें कुछ समय बाद लौटने के लिए कहा।

प्रत्येक पुत्र अलग-अलग नगर को पहुँचे। उनमें से एक ने सोचा–अवश्य पिताजी ने हमारी परीक्षा लेने के लिए हमे इस प्रकार भेजा है। अन्यथा जीवनभर बैठकर खाने लायक धन पिताजी के पास है तो उन्हें व्यापार के लिए हमें भेजने की कोई आवश्यकता न थी। अतः परीक्षा में उत्तीर्ण होकर पिताजी को प्रसन्न करना चाहिए। यह सोचकर बुद्धि बल से अलग-अलग व्यापार में उसने अपना धन लगाया और भोजनादि में केवल आवश्यकतानुसार व्यय करने लगा। इस प्रकार थोड़े ही समय में उसने मूलधन से कई गुना अधिक लाभ कमाया।

दूसरे पुत्र ने सोचा–हमारे पास धन तो खूब है, पर यदि उसे खर्चते रहे तो खतम होने में ज्यादा समय नही लगेगा। इसलिए मूलधन सुरक्षित रखकर व्यापर में जो भी लाभ हो, वो भोगना चाहिए। इस प्रकार व्यापार में अधिक ध्यान न देकर, मूल धन को सुरक्षित रखकर, लाभ से विशिष्ट भोजन-वस्त्र-आभूषण आदि के उपभोग में दिन व्यतीत करने लगा।

तीसरे (दुष्ट बुद्धि) पुत्र ने सोचा-समुद्र के जल के समान अथाह सम्पत्ति होने के बाद भी हमारे वृद्ध पिताजी को धन कमाने की सनक क्यों सवार हुई? कि हमें इतनी दूर व्यापार के लिए भेज दिया है। सचमुच, बुढ़ापे में आदमी सठिया जाता है–यह उक्ति मेरे पिताजी पर एकदम चरितार्थ हो रही है।

खैर ... धन कमाने के लिए माथापच्ची और मजदूरी कौन करे ?

मैं तो एक हजार सौनेया को मौज-मस्ती में उड़ा दूँगा। समुद्र में से एक बूंद पानी कम होने से समुद्र का परिमाण कम नहीं होता। पिताजी की अथाह सम्पत्ति में से एक हजार सौनेया खर्च होंगे तो तिजोरी खाली नहीं हो जायेगी। यह सोचकर वह अपना धन, जुआ, मांस, वेश्यादि सातों व्यसनों में उड़ाने लगा। अन्त में निश्चित समय पर वह घर पहुँच गया। अन्य दो पुत्र भी आ पहुँचे।

पिता ने क्रमशः प्रत्येक पुत्र का साक्षात्कार किया। मूल धन से अनेक गुना अधिक कमाकर लानेवाले पुत्र पर प्रसन्न होकर पिता ने उसको घर-व्यापार-कुटुम्ब परिवार आदि सब का मालिक बना दिया।

दूसरे पुत्र को घर-व्यापार में लगा दिया और मूल धन भी खर्च कर चुके तीसरे पुत्र को घर से निकाल दिया। बेचारा मजदूरी आदि करके कष्ट पूर्वक जीवन निर्वाह करने लगा। दूसरा पुत्र सुन्दर भोजनादि का अपभोग तो करता रहा, किन्तु प्रथम पुत्र की तरह संसार में यश-कीर्ति नहीं कमा सका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

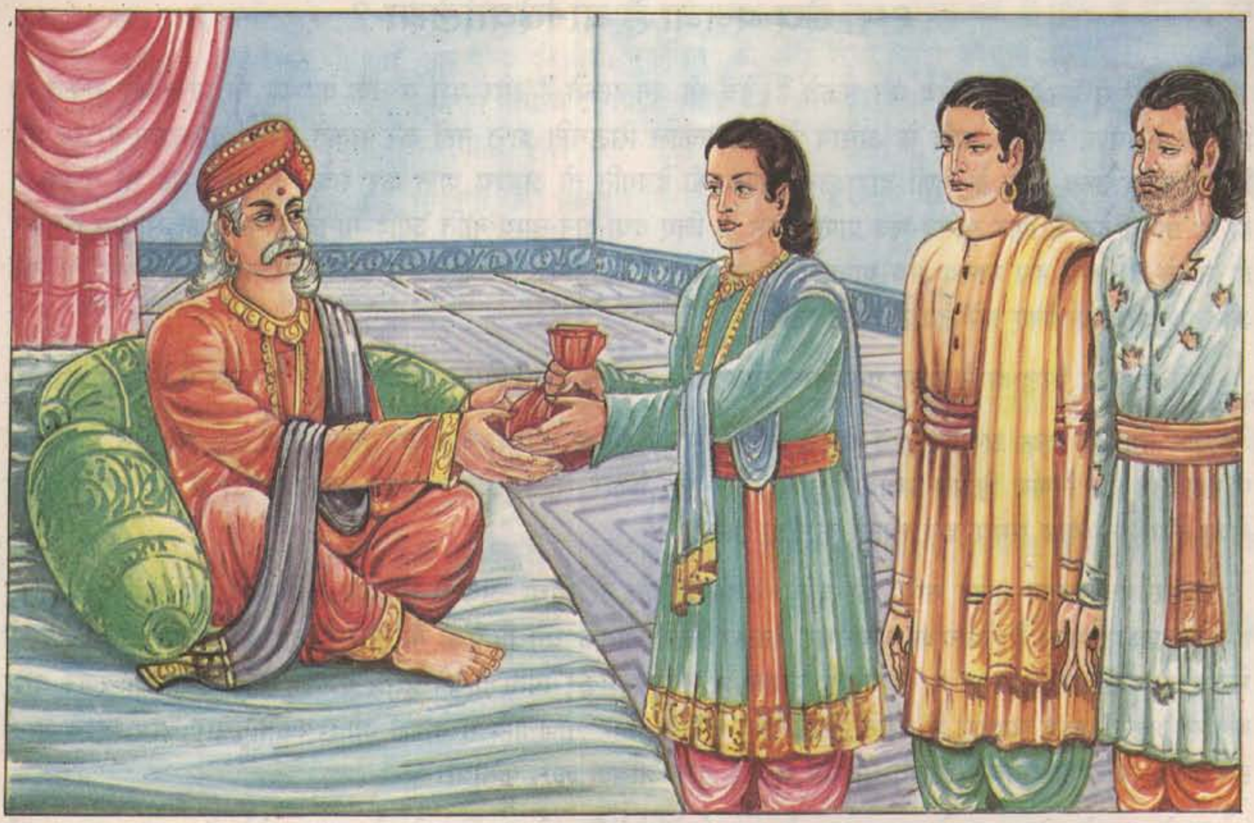

इस दृष्टान्त का उपनय बताते हुए सूत्रकार भगवान कहते हैं–

माणुसत्तं भवे मूलं लाभो देवगई भवे।

मूलच्चेएण जीवाणं नरगतिरिक्खताणं धुवं ७/१६

हमें प्राप्त मनुष्य भव मूल धन है। उसके द्वारा की गई साधना से प्राप्त स्वर्ग और अपवर्ग लाभ है। और मूल धन (मनुष्य भव) को बरबाद करने से नर्क गति एवं तिर्यंच गति प्राप्त होती है।

जो लोग मांस-मदिरा आदि खाते हैं, महारंभ और महा परिग्रह में रत रहते हैं, पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या करते हैं और विश्वासघात करते हैं, वे दिवालियों की तरह मानव भव के मूलधन को सुरक्षित नहीं रख सकते बल्कि दिवालिया, बनकर नर्क गति को प्राप्त होते हैं। और फिर से मनुष्य भव प्राप्त करने के लिये अयोग्य हो जाते हैं। इसी प्रकार जो लोग अन्याय, अनीति, प्रपंच और षड़यन्त्र करते हैं–गूढ हृदय वाले होते हैं– चालाकी करते हैं वे (तीसरे पुत्र के समान) मनुष्य गति से दूर हो जाते हैं और पशुओं की योनिओं में बार-बार जन्म-मत्यु की धक्कापेल झेलकर दुःखी हो जाते हैं।

जो लोग विशिष्ट तपस्वी-त्यागी या वैरागी नहीं है वरन् सरल है–उनका क्रोध कम हो दान-दया आदि में रुचि रखते हैं अन्याय आदि नही करते है, ऐसे गुणवाले मनुष्य मानव भव के रूप में अपना मूल धन सुरक्षित रखते हुए दूसरे जन्म में भी मनुष्य बनने की योग्यता रखते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और जो लोग शीलवन्त हैं, सम्यक्त्व-धर्म में स्थिर हैं–विरति और वैराग्य आदि गुणों को धारण करते हैं वे उत्तम पुरुष मानव भव के मूल धन से उपरोक्त साधना द्वारा भारी मुनाफा कमाकर मुक्ति प्राप्त करते हैं। वर्तमान में विशिष्ट संघयण-सामग्री के अभाव में भी उच्च स्तर की देवगति तो प्राप्त करते ही हैं।

यह सब जानने के बाद दिवालिया बनना ठीक है या देव? हम यह नहीं सोचते कि ७०-८० वर्ष की छोटी-सी जिन्दगी में दौड़-धूप, अन्याय और अनीति से प्राप्त पैसा किसके लिए कमाते हैं? क्या मौज-मस्ती करके दिवालिया बनने के लिए? बिल्कुल नहीं। यदि हम देव नहीं बन सकते तो मानव-भव प्राप्त करने की योग्यता तो बनानी ही चाहिए।

अन्त में–

इस प्रकरण और सम्पूर्ण पुस्तक का सार यह है कि यदि अमूल्य मानव भव को दैवीय नहीं बना सकते तो मानवता के रूप में सुरिक्षत तो रख ही सकते हैं। सुरक्षित रखा हुआ मानवता का मूल धन हमें महामानव बनाने में सहायता करेगा। देव ही नहीं देवाधिदेव के स्तर तक पहुँचा देगा।

जीवन-आकाश प्रकाश-पुंजों से छलक जायेगा।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सफल जीवन के सात सोपान

विदेहमुक्ति

वीतरागता

विरति

विरक्ति

विवेक

विद्या

विनय

पूज्य आचार्य श्री कलापूर्ण सूरीश्वरजी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्यपाद अध्यात्मयोगी श्रीमद् विजय कलापूर्ण सूरीश्वर जी महाराज साहब के कर-कमलों द्वारा लिखित ग्रन्थों की सूची

(१) अमृतवेल-सज्झाय के माध्यम से दुष्कृत गर्हा अर्थात् पाप-निन्दा, सुकृत अनुमोदना और अरिहंतादि परमेष्ठियों के प्रति समर्पण भाव इत्यादि मुख्य पदार्थों के मर्म को प्रकट करने वाली पुस्तक–"सहज समाधि"

(२) प्रीति-भक्ति-वचन और असंग इत्यादि अनुष्ठानों द्वारा परमात्म-भक्ति किस प्रकार की जाय? लाखों मील दूर स्थित परमात्मा किस माध्यम से हमारे मन-मन्दिर में मंगल-पदार्पण करते हैं..........? आदि भक्ति-विषयक पदार्थों का सुन्दर और सरल भाषा में निरूपण करने वाली पुस्तक–"मिले, मन भीतर भगवान।"

(३) इस संसार में (मृत्यु लोक में) रहते हुए भी हम मुक्ति सुख की वैरायटी प्राप्त कर सकते हैं–"समता के माध्यम से।" इस समता का दूसरा नाम "सामायिक" है। सामायिक के अनेक प्रकारों को सात्त्विक शैली में प्रस्तुत करने वाली पुस्तक–"सर्वज्ञ कथित सामायिक धर्म"

(४) अध्यात्मनिष्ठ श्री देवचन्द जी महाराज के द्रव्यानुयोग से युक्त चौबीसी स्तवनों के गम्भीर अर्थों को और सात्त्विक रहस्यों से प्रकट करने वाली पुस्तक–"परमतत्त्वनी उपासना"

(५) भक्ति योग विषयक चुने हुए छोटे-बड़े निबन्धों से अलंकृत पॉकिट बुक–"भक्ति योग"

(६) परमार्थी ध्यान क्या चीज है? जैन दर्शन के प्रत्येक अनुष्ठानों में "ध्यान योग" भरपूर मात्रा में है.......... जिस ध्यान में देव-गुरु-धर्म न हो वो ध्यान शुभ ध्यान नहीं हो सकता.......... इत्यादि स्पष्टताओं से युक्त ध्यान के हजारों प्रकार दर्शाने वाला अद्भुत अनोखा महाकाय ग्रन्थरत्न "ध्यान-विचार"

(७) आज तक जिस पुस्तक के माध्ययम से आचार्य भगवन्त ने स्वयं रात्रि कक्षाओं द्वारा हजारों छात्रों (विद्यार्थियों) को सरल और वैराग्यपूर्वक रोचक शैली में जैन तत्त्वों को कण्ठस्थ कराया है। ऐसे जैन दर्शन के हार्द समान नौ तत्त्वों और जीव विचार के पदार्थों को सुन्दर और अत्यन्त सरल भाषा में संक्षिप्त रूप में बताने वाली पुस्तक–"तत्त्वज्ञान प्रवेशिका"

(8) मुक्ति का मार्ग भक्ति है, पर भक्ति में प्रवल निमित्त होती है ....मूर्ति। इस प्रकार मूर्ति पूजा को अनेकविध शास्त्र-पाठों द्वारा और ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा सिद्ध करके मुक्ति की प्राप्ति में मूर्ति को अनन्य कारण रूप दर्शाने वाली पुस्तक–"भक्ति है माग मुक्ति का"

(९) सुन्दर-रोचक चुने हुए कुछ प्राचीन स्तवनों की अर्थपूर्ण विवेचना को प्रकट करने वाली पुस्तक–"तार हो तार प्रभु"

(१०) कविरत्न नारणभाई के विस्तृत प्रयत्नों से तैयार, पैंसठिया यन्त्र युक्त अनानुपूर्वी (जप) साधक आत्माओं के लिए अद्वितीय, नया और सचित्र प्रकाशन (पॉकेट बुक) "जप योग"

प्रस्तुत पुस्तक : अनन्त आकाश में

हजारों प्रकाश-वर्ष दूर-सुदूर अनन्त आकाश में, चमकते तारे भी होते हैं.........तो, कष्टदायक मंगल और शनि समान ग्रह भी होते हैं.......... यह विश्व भी एक विशाल 'गगन' है। जिसमें घोर अन्धकारयुक्त रात्रि में प्रकाश का पुंज फैलाने वाले तारों समान महापुरुष भी होते हैं............और उपद्रवकारी ग्रहों के समान विघ्न उत्पन्न करने वाले नीच पुरुष भी दृष्टिगोचर होते हैं।

इतिहास के अमर पृष्ठों में अंकित इन सबकी चमकती या कालिमायुक्त घटनायें, जम्बो जेट की २०वीं शताब्दी के मानवीय जीवन-व्योम को कुछ मूक संदेश देती हैं जो कि उत्थान और पुनरुत्थान के टर्निंग पोइंट को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है।

इस पुस्तक की सचित्र घटनाओं को न केवल पढ़िये बल्कि मनन भी कीजिये। कदाचित् .... व्यसनों के बादलों से घिरा हुआ......... और क्रोधादि-कौटुम्बिक क्लेश की कालिमा से कलुषित जीवन-आकाश, प्रकाश पुंजों से प्रकाशित हो उठेगा।

❋ ❋ ❋

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्मयोगी प. पू. आचार्य श्रीमद् कलापूर्ण सूरीश्वर जी म. सा.
द्वारा लिखित एवं सम्पादित पुस्तकें

DIWAKAR PRAKASHAN, AGRA. PH. : (0562) 351165

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org